मुक्तक माला

रचनाकार – श्री राकेश कुमार मिश्र

राकेश कुमार मिश्र

आत्मज :	स्व0 श्री लज्जा राम मिश्र
	स्व0 श्रीमती बृजरानी मिश्रा
जन्म स्थान	
एवं पता :	ग्राम बहादुर नगर, पोस्ट मोहम्मदी
	जनपद खीरी (उ.प्र.) 262804
दूरभाष :	9936754392
शिक्षा :	स्नातक बी.टी.सी.
सम्प्रति :	प्र.अ.पू.मा.वि. वि.क्षे मोहम्मदी
जन्म तिथि :	भार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष त्रयोदशी सम्वत 2015
साहित्यिक अवदान :	''चेतना के स्वर'' गीतिका संग्रह प्रकाशित
	''मुक्तक माला'' मुक्तक संग्रह प्रकाशित
	''छंद–माला'' अप्रकाशित
	''गीत–माला'' अप्रकाशित
	''वन–वीथिका'' खण्ड काव्य
	(राम कथान्श सवैया घनाक्षरी)

मुक्तक माला

(मुक्तक संग्रह)

लेखकः

राकेश मिश्र 'छन्दकार'

प्रकाशकः विश्व हिंदी साहित्य सेवा संस्थान, प्रयागराज

मुक्तक माला

(मुक्तक संग्रह)

रचनाकार : राकेश मिश्र 'छन्दकार'
ग्राम - बहादुर नगर, पोस्ट- मोहम्मदी
जनपद - खीरी, उत्तर प्रदेश-262804
चलभाष : 9936754392

वीहिसास पुस. 35—2021／03

प्रथम संस्करण : 2021

© कॉपीराइट : लेखक

मूल्य : रु० 100／-(एक सौ रूपये मात्र)

प्रकाशक : विश्व हिन्दी साहित्य सेवा संस्थान
एल.आई.जी-93, नीम सराय कॉलोनी,
मुण्डेरा, इलाहाबाद-211011, कानाफूसीः 9335155949
ई—मेल : sahityaseva@rediffmail.com

मुद्रक : एकेडेमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद

विशेष : प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का दायित्व और अधिकार लेखक का ही होगा. प्रकाशित रचनाओं से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नही है. सभी प्रकार के विवादों का न्याय क्षेत्र प्रयागराज, उत्तर प्रदेश होगा।

टंकण : एम.टेक. कम्प्यूटर्स, प्रयागराज, उ.प्र.

छंद अनुक्रमिका

क्रमांक	सूक्ष्म छंद विधान	पृ० सं०
1	वाणी वंदना	01
2	चौपाई/द्विगुणित चौपाई (16/32 मात्रिक)	2–15
3	वाचिक त्रग्विणी मापनी–212 212 212 212	16–38
4	विधाता छंदाधारित मापनी 1222 1222 1222 1222	39–55
5	विष्णु पद छंद (चौपाई +10 = 26 मात्र)	56–71
6	सार छंद (चौपाई +12 = 28 मात्रा)	72–77
7	लावणी छंद (चौपाई +14 = 30 मात्रा)	78–95
8	हरिगीतिका छंद (26 मात्रा–5, 12, 19, 26वीं मात्रा लघु, अंत में लघु गुरु)	96
9	गीतिका-मापनी–2122 2122 2122 212	97–100
10	दिग्पाल/मृदगति-मापनी– 221 2122 221 2122	101–106
11	पारिजात-मापनी– 212 2121 222	107–111
12	उपमान-दोहा का विषम चरण + 10 = 23 मात्रा	112–114
13	मंगल माया- 11, 11 = 22 मात्रा (मति से पूर्व आदि, त्रिकल)	115–117
14	रोला– 11, 13 = 24 मात्रा	118–119
15	वार्षिक द्वि यशोदा - मापनी 121 22, 121 22	120–121
16	तमाल छंद - चौपाई + 3 = 19 मात्र	122

17	रजनी छंद - मापनी – 2122 2122 2122 2	123
18	निश्चल-चौपाई + 7 = 22 मात्रा (अंत में गुरु लघु)	124
19.	प्रदीप छंद - चौपाई + दोहा का विषम चरण	125
20.	सिंधु छंद मापनी– 1222 1222 1222	126
21.	छंद चवपैया (10, 8, 12 = 30 मात्रा)	127
22.	छदं सरसी चौपाई + दोहा का सम चरण 27 मात्रा	128
23.	छंद रास चौपाई + 6 = 22 मात्रा	129
24.	छंद श्रृंगार 16 मात्रा (अंत में गुरु लघु)	130
25.	लौकिक अनाम मापनी – 221 2121 1221 212	131
26.	छंद गगन चौपाई + 9 मात्रा (अंत में गुरु लघु)	132
27.	छंद मनोरम - मापनी 2122 2122	133
28.	छंद उपेन्द्र बज्रा -मापनी 121 221 121 22	134
29.	छंद राधिका 13, 9 = 22 मात्रा	135
30.	लोक मुक्तक	136–141

भूमिका 'मुक्तक माला' : एक रम्य कृति

वरिष्ठ छंदकार श्री राकेश मिश्र सजग संवेदनशील निसर्ग-सिद्ध प्रतिभा के धनी हैं. वे मुक्तक और प्रबंध दोनों ही काव्य रूपों पर अपना समान अधिकार रखते हैं. उनकी गीतिका विधा की शताधिक रचनाओं का एक संग्रह चेतना के स्वर शीर्षक से 2017 में प्रकाशित हो चुका है. अब उनकी दूसरी काव्य कृति 'मुक्तक माला' शीर्षक से मुक्तक विधा के मनोहारी स्तवकों से सजकर सहृदय काव्य-रसिकों के सम्मुख उपस्थित है.

मुक्तक शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'मुक्त' शब्द में कन् प्रत्यय के योग से बना है. जिसका अर्थ है बंधन रहित या मुक्त अथवा स्वतंत्र होना. तात्पर्य यह कि जहां काव्य के प्रबंधात्मक रूप-महाकाव्य तथा खंडकाव्य में प्रत्येक छंद उसके कथा-सूत्र से पूर्वापर सम्बद्ध होता है, वहीं इसके विपरीत मुक्तक में उस संबंध से सर्वथा रहित और स्वतंत्र होता है. मुक्तक में भाव तत्व का प्राधान्य रहता है. कवि की वैयक्तिकता अनुभूतियां, भावनाएं और आदर्श प्रमुख रहते हैं. दूसरे शब्दों में जहां प्रबंध कृति में कृतिकार की किसी महती इच्छा, इतिवृत्तविधायिनी बुद्धिमत्ता एवं शिल्प कुशल चेतना का प्रतिफलन होता है, वहां इसके विपरीत में कवि की सद्यः स्फुरित भावुकता, समाज-चेतना, विशिष्ट भाव-विधायिनी पटुता का प्रकाशन होता है. तभी उसे अपने आप में संपूर्ण अथवा अन्य निरपेक्ष वस्तु माना जाता है. आचार्य अभिनव गुप्त ने मुक्तक को स्पष्ट करते हुए कहा है, 'पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्'। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में प्रबंध और मुक्तक काव्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता.--- इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित करके उसे अत्यंत संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है.' यहाँ ध्यान देने योग्य है कि- प्रस्तुत 'मुक्तक माला' कृति के मुक्तक 'मुक्तक-काव्य' की पारंपरिक अवधारणा से पृथक, वर्तमान की नई प्रचलित छंद विधा के रूप में अपनी स्वतंत्र पहचान रखते हैं. यह चार पंक्तियों का मुक्तक ऐसी लघु रचना होती है जिसकी पहली,

दूसरी और चौथी पंक्ति का तुकांत समतुल्य रहता है तथा तीसरी पंक्ति तुकांत-रहित होती है. अंतिम पंक्ति संपूर्ण काव्य का निचोड़ प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है. कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मुक्तक माला' के प्रत्येक मुक्तक में सरस व्यंग्य-कौशल, मार्मिक भावोपयुक्त शब्द-चयन की दक्षता का गुण विद्यमान है. ये मुक्तक वास्तव में कवि-मानस से उद्भूत होकर बिखरे ऐसे कान्तिमय सजल मुक्ताबुन्द हैं जो सहृदय सुमनों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर काव्यानंद से आप्लायित कर देने में सक्षम हैं. इन मुक्तकों में भक्ति और अध्यात्म की चेतना है, आस्था का अर्ध्य है, कवि और कविता का दायित्व-बोध है, हिन्दी के प्रति अटूट अनुराग है, प्रेम-सौन्दर्य का प्रकाश है, सामाजिक सरोकारों के प्रति सजगता है, वर्तमान की विसंगतियों का पर्दाफाश है, जीवन-जगत् में व्याप्त कदाचार और पाखंडवाद पर प्रहार है, जीवन के व्यावहारिक आदर्श हैं और सर्वोपरि है- मानवीय संवेदना एवं करुणा जगाने की बलवती स्पृहा तथा देश और राष्ट्र को सशक्त बनाने की व्याकुल चिंतना.

कृतिकार विघ्न-विनाशक मंगलमूर्ति गणेश से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवदात कामना करता है :

मानवता का संकट हर दो, निज इच्छित ऐसा कुछ वर दो।
कलुषित भाव मिटे अंतर के, तन पावन मन सावन कर दो।

उसे अलक्ष्य, अनिर्वच परम शक्तिमान पर अडिग आस्था है वह प्रश्नात्मक शैली में उसकी ओर इंगित करता कहता है.

घाटी घाटी पर्वत पर्वत गीत सुनाता कौन है।
तिमिर हटाकर नव आशा के द्वार खोलता कौन है।।

एक ओर कवि की वृत्ति आद्या शक्ति राधा की महिमा में रमती तो दूसरी ओर मनुष्यता के आदर्श श्री राम में विरमती है---

पांव ब्रजभूमि धर गयी राधिका, प्रीति की रागिनी भर गयी राधिका।
मर गयी राधिका श्याम के प्यार में, श्याम को पर अमर कर गयी राधिका।

आईने में स्वयं को निहारा नहीं, जो कहा आचरण में उतारा नहीं।
मोह के दलदलों में फंसे रह गए, राम को आर्त-स्वर में पुकारा नहीं।

जीवन ही संघर्ष है इसमें धूप छांव सर्दी गर्मी सभी कुछ झेलने, संकटों से

जूझते रहना स्वभाविक है. अतएव हताशा का औचित्य नहीं. एक सफल जीवन जीने के लिए यथावत् औरों के अनुभवों तथा अपने स्वयं के अनुभवों से सीख लेना जरूरी है. तदनुसार अपने में सुधार करके अशिव-वृत्तियों को काट-छांट कर हम अपनी जिंदगी संवार सकते हैं. इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि कहता है---

एक आशा किरण है निराशा नही, जिंदगी रोशनी है कुहासा नहीं।
जिंदगी खूबसूरत लगे किस तरह, आपने ठीक से जब तराशा नहीं।

प्रेम और सौन्दर्य जीवन में अपूर्व स्फूर्ति का संचार करते हैं. प्रेम या प्यार की परिपूर्णता, सौन्दर्य की सफलता और मानव-शरीर की सार्थकता को मुक्तक मालाकार ने बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है----

प्यार बंधन दिया अधूरा है, मेघ गर्जन बिना अधूरा है।
देव दुर्लभ कहा गया नर-तन, ईश वंदन बिना अधूरा है।
हास-मृदु अर्ध-विकसित कली की तरह, देखनी काव्य की लेखनी की तरह।
भोर के नम क्षितिज से तुम्हारे नयन, बोलनी श्याम की बांसुरी की तरह।

जाह्वी के तटों से तुम्हारे अधर, चाहता चूम लूं आचमन की तरह।

प्रकृति के मनोरम दृश्य-व्यापार तथा पर्व-त्यौहार हमारे मन में एक नवीन उल्लास जगाते हैं, पर कभी-कभी जीवन की विषमता के दृश्य हमें अवसाद ग्रस्त भी बना देते हैं. इस स्थिति का एक-एक उदाहरण यहां दर्शनीय है---

खिलखिलाने लगी चंद्र की चंद्रिका, जगमगाने लगी हर गली वीथिका।
छू गई चौथ के चंद्रमा की किरण, खिल गयी आज फिर नेह की वाटिका।

कहीं गरजते कहीं बरसते बादल छाए होली में।
फागुन की खुशियों में मौसम टांग अड़ाए होली में।
काम-धाम सब बंद पड़े हैं फिर त्यौहार मने कैसे,
निर्धन के बच्चे बैठे हैं आस लगाए होली में।

हमारा चतुर्दिक परिवेश प्रायः अनेकानेक विषमताओं विद्रूपताओं से ग्रस्त है. भ्रष्टाचार और मिथ्याडंबर या पाखंड का बोलबाला है. स्वार्थ-पंकिल

मनोदृष्टि के कारण मनुष्य की संवेदना, करुणा, सहानुभूति, ममता दया आदि उच्चवृत्तियां क्षीण होती जा रही हैं. कविवर राकेश मिश्र ने ऐसी विसंगतियों, कुरीतियों एवं 'मनस्य अन्यत् वचनस्य अन्यत्' वाले मुखोटे धारियों पर तीखे व्यंग्य-शर छोड़े हैं ऐसे--मुक्तको में कवि की व्यंग-पटुता अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई है कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं--

सब घाट हैं पुराने पंडे नये-नये हैं। झंडे वही पुराने डंडे नये-नये हैं।
जो लूट कल मची थी वह बरकरार अब तक,
बस लूटमार के अब फंडे नये-नये हैं।
लुटेरों की चमकती बस्तियां दिखती बहुत लेकिन,
न मिलते ढूंढने से भी उदारों की कहीं बस्ती।
उढ़ाते वस्त्र नदियों को, बहाते धार में लेकिन,
गरीबों के लिए दो गज कफन से भी कृपण होते।
अंधेरों के कुशासन में उजाले डर रहे होंगे।
जहां ईमान वाले लोग भूखे मर रहे होंगे।
हवा का रुख बयां करता अभी वह वक्त आएगा,
बेचारे हंस कौवों की गुलामी कर रहे होंगे।

आज संग्रह-वृत्ति की बाढ़, पर छिद्रान्वेषण में रति, आत्मावलोचन से विरक्ति जाति-वर्ग भेद और अराजकता हमारे मांगलिक सपनों को धूल-धूसरित करती जा रही है. लोकहित और सुधार के बड़े-बड़े दावे निष्प्रभावी दिखलाई देते हैं. कविवर राकेश मिश्र ने 'इन विडंबनाओं' को बखूबी कोसा है--

धरा पर त्रासदी फैली गगन की बात करते हो।
बढ़ाकर द्वेष की खाई अमन की बात करते हो।
जलाकर झुग्गियाँ अपना महल रोशन किया तुमने,
जिन्हें ऊंचा उठाने की जतन की बात करते हो।

रामधारी मिले कुछ निराला मिले, ज्ञान का लोग ओढ़े दुशाला मिले।
खुद अंधेरी गली मे भटकते मगर, रोड पर बाँटते वे उजाला मिले।

ऐसी अप संस्कृति से ऊब-उकताकर कवि को अपने विगत ग्राम्य-व्यवस्था

की याद आती है, जो आज स्मृति-संचारी बनकर ही रह गयी है-

निर्मल सरल स्वभाव कहां है? जनजीवन में चाव कहाँ है?
सर्दी में घर के बाहर अब, जलता हुआ अलाव कहाँ है?
सरकण्डों के ढेर कहां हैं? झरबेरी के बेर कहां हैं?
साथ साथ रहते थे मिलकर, जुम्मन भगत सुमेर कहां है?

राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी हिन्दी की उपेक्षा कविमन को अतीव आकुल-व्याकुल कर देती है, अतः कवि कह उठता है----

खींचते हैं चीर दुःशासन यहां कितने, लग रही अब द्रौपदी की लाज है हिन्दी।

कोरोना महा-विभीषिका ने वर्तमान विश्व-जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया है सारी सक्रियता जीवन की चहल-पहल कर अंकुश लग गया है. इस स्थित पर कविवर मिश्र की यह व्यंग्योक्ति कितनी मर्मस्पर्शी और यथार्थपरक है---

धमा-चौकड़ी शोर मचाना भूल गए, गलियों में भी घात लगाना भूल गए।
चिड़ियाँ भी चालाक हुई कोरोना में, और शिकारी जाल बिछाना भूल गए।

'मुक्तक माला' कृति में मुक्तकों में स्थान-स्थान पर कवि की अनूठी कहन, लाक्षणिक और प्रतीकात्मक अभिव्यंजना-प्रियता के मनोहारी दर्शन होते हैं. कवि को अपने राष्ट्र हित की अगाध चिंता है. इसके लिए अपेक्षा है अपने स्वर्णिम अतीत के पृष्ठ पलटने की, पुराने आदर्शों को युगानुकूल आचरण में ढालने की. इसका निर्देश करता कवि कहता है-

फूँक-फूँक पग धरने वाले हैं अब भी लेकिन कम हैं।
राश्ट्र धर्म पर मरने वाले हैं अब भी लेकिन कम हैं।
स्वार्थ सिद्ध करने वालों की लाइन लगी हुई लेकिन,
पर हित में कुछ करने वाले हैं अब भी लेकिन कम हैं।

कवि की भाषा भावानुरूपिणी सानुप्रासिक और साफ-सुथरी सरल व्यावहारिक है. शैली भावानुवर्तनी 'प्रसाद' ओज और माधुर्यपूर्ण है. सानुप्रासिक शब्द-चयन, अंतर्तुकान्तता नाद-सौंदर्य, नूतन उपमान-विधान, प्रतीकों तथा बिंबों की सुष्ठ-योजना तथा मुहावरों के प्रयोग से उसकी अभिव्यंजना का प्रभाव 'अचूक हो उठा है'

'दिन हुए एक लघु मुक्तिका की तरह रात लंबी जटिल मापनी हो गई'

'आदमी के टेंट विस्तरों से लगे, भाव कलुषित बदलते न मिटते कभी, ज्यों शिला पर लिखे अक्षरों से लगे' जैसे मौलिक उपमानों- 'का विधान सर्वथा' लाघनीय है. इसी प्रकार कहीं-कहीं विराट उपमान भी प्रयुक्त हुए हैं. यथा,

ढकी-ढकी सी सभी दिशाए, उठी जलधि से घिरी घटाएं।
लगे कि जैसे खुले मगन में, कराल शिव की खुली जटाएं।

इसके अतिरिक्त पन्ने खोलना, दर्द टटोलना, फूँक-फूँककर पग रखना, जेब के आफताब होना, दीवारों के कान होना जैसे मुहावरों के प्रयोग से शैली में एक विशेष रवानी का आधान हुआ है.

'मुक्तक माला' के मुक्तक विभिन्न वार्णिक-मात्रिक छंदों के आधार पर रचित हैं, जो कवि के असाधारण छंदाधिकार के प्रमाण हैं. अलंकारों के लिए कृतिकार को कोई प्रयास नहीं करना पड़ा है. विभिन्न शब्द एवं अर्थ संबंधी अलंकृतियां स्वभाविक रूप से इन मुक्तकों में यथास्थान आ विराजी हैं.

संक्षेपतः कविवर राकेश मिश्र-प्रणीत प्रस्तुत 'मुक्तक माला' कृति निःसंदेह ऐसे सजल सरस मौक्तिकों का उज्ज्वल हार है जिसकी तरल आभा काव्य-रसिकों का कंठहार बनकर सुशोभित होगी. ऐसे लेखनी के धनी प्रातिभ सुकवि श्री राकेश मिश्र को मेरी अनेकानेक हार्दिक बधाइयां एवं अशेष शुभकामनाएँ!

डॉ उमाशंकर शुक्ल शितिकंठ
538क/88त्रिवेणीनगर-1
डालीगंज रेलवे क्रासिंग
लखनऊ-226020
चलभाष-7007217102, 9451065688

मंगलवार, दिनांक : 09 / 03 / 2021

जय वीणापाणि माँ

'मुक्तक माला'

सुकवि श्री राकेश मिश्र की कृति 'मुक्तक माला' के आस्वादन करने का सुयोग प्राप्त हुआ. 'मुक्तक माला' वस्तुतः माणिक-मणिकाओं की दीप्तमय सुदीर्घ लड़ी है. 'मुक्तक माला' में संग्रहीत समस्त रचनाएं छान्दस-अनुशासन में निबद्ध हैं.

राग-विराग, ग्रीष्म-शीत, मावस-पावस, वसंत-अनंत देश-देशान्तर, स्वराष्ट्र-प्रेम जैसे विविध विषयों पर बड़ी विदग्धता से लेखनी चलाई है. दोहों के उपरान्त मुक्तक ही आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जिसे कवि ने अपनी विधा स्वीकार करते हुए लेखन के सभी मापदंडों को पीछे छोड़ दिया है.

'मुक्तक माला' की प्रत्येक रचना को और अधिक प्रभविष्णु बनाने हेतु कवि ने सर्वथा नवीन बिम्बों, काव्यगत अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है.

काव्य के प्रथम प्रक्षेपण में कवि ने अपने भाव-प्रसून माँ-भारती के श्री चरणों में अतीव श्रद्धा के साथ अर्पित किए हैं. दृष्टव्य है-

जाह्नवी रवि सुता गोमती को नमन।
पूज्य भारत धरा भारती को नमन।
मातु अर्पित तुम्हें मुक्तकों की लड़ी,
नेह-आशीष की पावती को नमन।

अध्यात्म की भाव-भूमि पर कवि ने जग के नश्वरता को स्वीकार कर अपनी भावनाओं का सफल प्रकाशन किया है. यथा-

माया की गठरी का कोई, बंधन काम नहीं आएगा।
इंद्रिय-अश्वों से सज्जित मन-स्यंदन काम नहीं आएगा।
बड़े जतन से रहे सजाते, जीवन भर कंचन-काया को,
इस काया का रत्ती भर भी, कंचन काम नहीं आएगा।

इसी क्रम में यह मुक्तक भी दृष्टव्य है-

तृप्त न हो यदि वसुंधरा तो, सावन व्यर्थ चला जाता है।
बच्चों के किलकारी बिन, आँगन व्यर्थ चला जाता है।

भस्म और सिर जटा जूट सब, व्यर्थ बिना वैरागी मन के,
शीतल मस्तक हो न सका तो, चंदन व्यर्थ चला जाता है।

आज के साहित्यिक-परिवेश पर सुंदर प्रतिमान-विधान का सदुपयोग करके कवि ने अपनी उदात्त भावनाओं को बड़ी विदग्धता से प्रकाशन किया है। यथा-

रामधारी मिले कुछ निराला मिले।
ज्ञान का लोग ओढ़े दुशाला मिले।
खुद अंधेरी गली में भटकते मगर,
रोड पर बांटते वे उजाला मिले।

'जीवन संघर्ष का ही दूसरा नाम है' इस उक्ति में चरितार्थ करते हुए कवि ने अपनी सद्भावनाओं का सफल प्रक्षेपण किया है. यथा-

जीवन है संघर्ष पुरातन, कुसुमित नव मधुमास नहीं।
कर्म क्षेत्र से भी विरक्ति को, कहते हम
सन्यास नहीं,
सांसे सधी-बँधी चलती बस, आशाओं की डोरी से,
पथिक भ्रमित हो जाते अक्सर, जिन्हें आत्मविश्वास नहीं।

और अंत में शिशिर-काल का वैभिष्ट- वर्णन सर्वथा नवीन प्रतिमानों को प्रतिस्थापित करते हुए कवि कहता है-

बर्फीले पवनों ने जैसे, ली अंगड़ाई लगती है।
जिनके बल पर शीतकाल की, सबल कलाई लगती है।
जकड़ लिया है जिसने आकार, खग-कुल का मधुरम कलरव,
हरी-भरी आँगन की तुलसी, भी मुरझाई लगती है।

कविवर श्री राकेश मिश्र जी को सुंदर काव्य-प्रणयन हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ. विश्वास है, इनकी 'मुक्तक माला' कृति हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण करेगी, यह उनकी दूसरी प्रकाशित कृति है. उनका साहित्यिक जीवन अनवरत् गतिमान रहे इसी सद्इच्छा के साथ।

डॉ वृजविहारी 'वृजेश'
डी. इंजी, डी. लिट।

'मंगलकामना'

बड़े ही हर्ष का विषय है कि बेसिक शिक्षा परिवार, विकास क्षेत्र मोहम्मदी के प्रधानाध्यापक आदरणीय राकेश मिश्र जी का एक काव्य संग्रह 'मुक्तक माला' नाम से प्रकाशित होने जा रहा है यह हमारे लिए गौरव की बात है. कवि एवं शिक्षक समाज के दर्पण कहे जाते है, जिसका समुचित निर्वहन मिश्र जी कर रहे हैं. 'मुक्तक माला' मुक्तक काव्य संग्रह वास्तव में हिन्दी साहित्य क्षेत्र की अमूल्य निधि है. उक्त काव्य संग्रह में शताधिक मुक्तकों का समावेश किया गया है जो कथ्य तथ्य भाव प्रभाव से अपने में बेजोड़ हैं. आपकी रचनाएं समाज के लिए संदेश पद देश भावना से ओतप्रोत व चिंतन से परिपूर्ण हैं. मुझे उक्त कृति पर कुछ लिखने का अवसर मिला जिसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ. मिश्र जी की पूर्व में प्रकाशित कृ ति 'चेतना के स्वर' गीतिका संग्रह का भी रसास्वादन मैंने किया है, जो आज भी मेरे पुस्तकालय में सुरक्षित है.

अंत में मैं बेसिक शिक्षा विभाग जनपद खीरी की ओर से बहुत-बहुत मंगलकामनाएँ ज्ञापित करता हूँ, 'मुक्तक माला' साहित्य प्रेमियों के हृदयों में निवास करे एवं हिन्दी साहित्यांगन में मील का पत्थर साबित हो।

बुद्ध प्रिय सिंह
जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी
लखीमपुर-खीरी
चलभाष-9453004171

दिनांक : 05 / 03 / 2021

'मंगलाशा'

बेसिक शिक्षा परिवार के लिए बड़े ही गौरव की बात है कि विकास क्षेत्र मोहम्मदी के के वरिष्ठतम प्रधानाध्यापक आदरणीय राकेश मिश्र जी का एक काव्य संग्रह 'मुक्तक माला' नाम से प्रकाशित होने जा रहा है. मुझे उक्त कृति के पाठन एवं दो शब्द लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. कवि एवं शिक्षक समाज के दर्पण कहे जाते है, जिसका समुचित निर्वहन मिश्र जी कर रहे हैं. 'मुक्तक माला' मुक्तक काव्य संग्रह वास्तव में हिन्दी साहित्य क्षेत्र की अमूल्य निधि है. उक्त काव्य संग्रह में शताधिक मुक्तकों का समावेश किया गया है जो कथ्य तथ्य भाव प्रभाव से अपने में बेजोड़ हैं. आपकी रचनाएं समाज के लिए संदेशप्रद देश भावना से ओतप्रोत व चिंतन से परिपूर्ण हैं. मिश्र जी की पूर्व में प्रकाशित कृति 'चेतना के स्वर' गीतिका संग्रह का भी रसास्वादन मैंने किया है. मुक्तक-माला कृति में समाज की पीड़ा की अनुभूति, विसंगतियों और विद्रूपताओं का बड़ी ही कुशलता से इंगित किया गया है. आपके मुक्तकों में शाश्वत सिद्धांतों का समन्वय युगानुकूल सामयिकता और आंतरिक अनुभूति प्रतिध्वनित होती है. भावों की गम्भीरता एवं सूक्ष्मता रसप्रवणता पाठक के मन को अंत तक सम्मोहन में बाँधने में सक्षम है.

मैं बेसिक शिक्षा विभाग विकास क्षेत्र मोहम्मदी की ओर से बहुत-बहुत बधाई ज्ञापित करता हूँ, 'मुक्तक माला' मुक्तक संग्रह साहित्याकाश में ध्रुव तारा सदृश हमेशा जगमगता रहे!

जगन्नाथ यादव
खण्ड शिक्षा अधिकारी
मोहम्मदी, लखीमपुरखीरी
चलभाष : 9415843376

दिनांक : 26 / 03 / 2021

‘मुत्तक्क माला’ एक अमूल्य कृति

माँ गोमती के आशीर्वाद से मोहम्मदी की धरती से साहित्य व काव्य के क्षेत्र में अनेक विभूतियां आज चरम पर पहुंच कर कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं. उन्हीं विभूतियों में शिक्षा जगत से जुड़े परम आदरणीय श्री राकेश मिश्र प्राध्यापक द्वारा रचित ‘मुक्तक माला’ के मुक्तकों में एक अलग काव्यरस की अनुभूति होती है, शिक्षा क्षेत्र में कर्तव्य निष्ठा से रहकर साहित्य साधना करते है. आपकी काव्य साधना से साहित्य के क्षेत्र में युवा पीढ़ी को इनका मार्गदर्शन प्राप्त हो रहा है. मैं आदरणीय मिश्र जी की लेखनी की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए माँ शारदा से प्रार्थना करता हूं कि ‘मुक्तक-माला कृति जन-हमेशा विद्यमान रहे, और हिन्दी साहित्याकाश में ध्रुव तारे की भाँति आलोकित रहे.

आदरणीय मिश्र जी जो हमारे चाचा जी भी हैं इन्हें कोटिशः प्रणाम! धन्यवाद!

भवदीय
डा० कमलेश कुमार दीक्षित
पीएचडी
संस्थापक पब्लिक प्राचार्य
श्री कृष्णा इंटर कॉलेज कृष्णा महाविद्यालय मोहम्मदी खीरी

दिनांक : 16/03/21

‘हार्दिक मंगलाशा’

आदरणीय अग्रज कविश्रेष्ठ श्री राकेश मिश्र ‘छंदकार’ द्वारा रचित काव्य-कृति ‘मुक्तक माला’, मानवीय संवेदनाओं के सोपानों पर सहज ही चढ़ती व खरी उतरती हुई, परिवर्तित परिवेश की अनुपम मुक्तक-काव्य कृति है, जिसे पढ़ने के लिए पाठक की जिज्ञासा निरंतर बढ़ती रहती है. पुस्तक में समाहित अलंकारिक बिम्ब-प्रतिबिम्ब, प्रतीक-उपमान, भाषा की सहजता-तरलता पाठक-मन को अनायास ही आकर्षित करने में पूर्णतया सक्षम है. सम्पूर्ण पुस्तक सीखने-सिखाने के सिद्धांत पर सफलतापूर्वक आधारित है. प्रस्तुत ‘मुक्तक माला’ पठनीय, अनुकरणीय एवं संग्रहणीय है।---

छंदाधारित शिल्पयुत,
पुष्ट-भाव साहित्य।
‘मुक्तक माला’ काव्य-कृति,
ज्यों नभ में आदित्य।।

पुस्तक प्रकाशन की आदरणीय मिश्र जी को सहृदय बधाई व उत्तरोत्तर शुभकामनाएँ।

राजकिशोर मिश्र(महामंत्री)
प्रज्ञालोक साहित्य सृजन संस्थान, मोहमदी-खीरी।
मोबा-9696362829

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आदरणीय राकेश मिश्र 'छंदकार' का मुक्तक संग्रह 'मुक्तक माला' प्रकाशित हो रहा है. मुक्तक समकालीन हिन्दी साहित्य में एक अत्यंत लोकप्रिय विधा है. आपके मुक्तकों का मैं नियमित पाठक व प्रशंसक रहा हूँ. आपके मुक्तकों में विलक्षण कथ्य, अनूठी कहन, व्यंजना, शब्द चमत्कार के साथ-साथ बहुआयामी चिंतन शैली के दर्शन होते हैं.

आपके मुक्तकों में लयात्मकता अपने ओजपूर्ण पद-विन्यास, प्रतीक, बिंब, मुहावरे, मिथक रूप में उपस्थित होकर चमत्कार की सृष्टि करने में सक्षम हैं. मुक्तककार की यही विशेषता पाठकों को अंत तक आकर्षण के जादू में बाँधे रखती है. आपने हिन्दी के अनेक सनातनी छंदों को आधार बनाकर मुक्तकों का सृजन किया है. उनमें समसामयिक घटनाक्रम, सामाजिक कुरीतियों, विद्रूपताओं और विसंगतियों के साथ-साथ मानव-मन के सभी भावों-प्रेम, पीड़ा, विरह, भक्ति आदि का अत्यंत कुशलता से चित्रण किया है. आज जब समाज में विघटनकारी तत्व हावी हो रहे हैं, स्वार्थपरता मनुष्य स्वभाव का एक अनिवार्य घटक बनती जा रही है, ऐसे में सकारात्मक परिवर्तन के लिए सत्साहित्य की आवश्यकता है जो पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें अंदर तक झकझोरने की क्षमता रखता हो.

मुक्तक माला आदरणीय राकेश मिश्र छंदकार जी की एक ऐसी कृति है जिसमें उनके विचारों की प्रौढ़ता और परिपक्वता के दर्शन होते हैं. मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह कृति काव्य-प्रेमियों एवं काव्य-मर्मज्ञों के मध्य निश्चित रूप से समादृत होगी. इस पठनीय एवं संग्रहणीय मुक्तक संग्रह के प्रकाशन पर कृतिकार को अंतर्मन से शुभकामनाएँ.

डॉ बिपिन पाण्डेय
पी.जी.टी. (हिन्दी)
केंद्रीय विद्यालय क्रमांक-2, रुड़की
हरिद्वार, उत्तराखंड-247667

शुभकामना संदेश

परम श्रद्धेय आदरणीय श्री राकेश मिश्र जी जोकि वर्तमान में बेसिक शिक्षा जनपद खीरी, वि०क्षे० मोहम्मदी के उ०प्रा० विद्यालय जैती में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत है। आपने अपनी विलक्षण क्षमता और कर्त्तव्यनिष्ठा से बेसिक शिक्षा लखीमपुर-खीरी को ही नहीं बल्कि सम्पूर्णा जनमानस को अपनी लेखनी के द्वारा जीवन जीने की कला से अवगत कराया है। वास्तव में आप द्वारा रचित काव्य जनमानस को आदर्श जीवन जीने के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य्र करेगा। ऐसे कर्मयोगी, बेसिक शिक्षा परिवार के गौरव, कवि हृदय, विराट व्यक्तित्व की अनुपम लेखनी से रचित समुद्र सी गहराई और ज्ञान की लहरों के परिपूर्ण काव्य मुक्तक माला के लिए श्रद्धेय श्री राकेश मिश्र जी को भावपूर्ण हार्दिक नमन करते हुए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

विनीत कुमार शुक्ल
अध्यक्ष
उत्तर प्रदेशीय जूनियर शिक्षक संघ
मोहम्मदी-खीरी

माँ शारदे के श्री चरणों में समर्पित

जाह्नवी यम सुता गोमती को नमन।
पूज्य भारत धरा भारती को नमन।
मातु अर्पित तुम्हें मुक्तकों की लड़ी
नेह आशीष की पावती को नमन।

राकेश मिश्र
'छंदकार'

विधा-पद

(वाणी वंदना)
ब्रह्माणी वरदे

भरूँ उड़ान दूर तक नभ में, उड़ने को पर दे।
वरद-हस्त तू शीष हमारे, एक बार धर दे।।

शुभ्र अंलकृत भाव जगें नित, ऐसा कुछ कर दे।
मातु शारदे लेखन को गति, फर-फर-फर-फर दे।।

कागों के कर्कश कंठों में, कोकिल सा स्वर दे।
कटु-वादी लोगों के मुख में, घीं शक्कर भर दे।।

हर कन्या दुर्गा बन जाए, धनु तरकश शर दे।
कब से तुझे पुकार रहा माँ, कुछ तो उत्तर दे।।

-मुक्तक-
मातु शारदे दीप जलाकर, आलोकित हृदयांगन कर दो।
शब्द-शब्द शर और लेखनी, को सारंग शरासन कर दो।
नव-बसंत भर दो उपवन में, महक उठें उर की कलिकाएँ,
हर मनका मुक्तक माला का, तुलसी दल सा पावन कर दो।

ढले आचरण में जब कविता
दीप हृदय का जल जाता है।
अंधकार के गलियारों में
भूला पथिक सँभल जाता है।
मुखरित हो जाते कोकिल स्वर
सूने सूने से उपवन में
मन के भाव बदल जाते हैं
जीवन स्वयं बदल जाता है।

सुख का हो या दुख का मौसम
नियत समय पर टल जायेगा।
समय बहुत गतिमान, सोच से
आगे बहुत निकल जायेगा।
सुख की चाह, मान की आशा
में अटका-भटका रहता मन
किया नहीं परमार्थ-पराक्रम
जीवन फिर निष्फल जायेगा।

श्रद्धा-भाव बिना देवों का
पूजन व्यर्थ चला जाता है
गलत ढंग से संचित होता
वह धन व्यर्थ चला जाता है।
अपने मन की असह्य वेदना
मन में कैद भले रह जाए
अंधों के आगे आँखों का
क्रन्दन व्यर्थ्र चला जाता है।

कभी समय पर काम न आए
सम्बल व्यर्थ कहा जाता है।
उठकर पुनः सिंधु में बरसे
बादल व्यर्थ कहा जाता है।
नियत चक्र में बँधे हुए सब
फलते और फूलते तरुवर
कुसमय में डाली पर आए
वह फल व्यर्थ कहा जाता है।

तृप्त न हो यदि वसुंधरा तो
सावन व्यर्थ चला जाता हैं।
बच्चों की किलकारी के बिन
आँगन व्यर्थ चला जाता है।
भस्म और शिर जटा-जूट सब
व्यर्थ बिना बैरागी मन के
शीतल मस्तक हो न सका तो
चंदन व्यर्थ चला जाता है।

धूल दर्प की जमी हृदय पर
दर्पण व्यर्थ चला जाता है।
हो न समर्पण मन तो तन का
अर्पण व्यर्थ चला जाता हैं।
जीते माता और पिता का
यदि सम्मान नहीं कर पाए
पितृ-पक्ष में फिर पितरों का
तर्पण व्यर्थ चला जाता है।

माया की गठरी का कोई
बंधन काम नहीं आएगा।
इन्द्रिय-अश्वों से सज्जित मन
स्यंदन काम नहीं आएगा।
बड़े जतन से रहे सजाते
जीवन भर कंचन-काया को
इस काया का रत्ती भर भी
कंचन काम नहीं आएगा।

जीवन-सुख के संसाधन में
छल-बल काम नहीं आएगा।
कमल भले खिल जाए मन का
दलदल काम नहीं आएगा।
जुड़ा हुआ धरती से जीवन
धरती से सम्बल मिलता है
ऊँचे नभ में उड़े चित्त का
बादल काम नहीं आएगा।

अहम-बहम का वृक्ष शुष्क-मन
मरुथल में भी पल जाता है।
लेकिन अपने आस-पास की
सारी नमी निगल जाता है।
कष्ट और को देने को ही
कंटक तन पर धारण करता
चुभकर किसी पैंर में उसका
दो पल हृदय बहल जाता है।

हुए प्रदूषित तालाबों में
पंकज नहीं खिला करते हैं।
तन के साधक हैं पर मन के
साधक नहीं मिला करते हैं।
बदला-बदला रुख लगता जब
बासंती सुरभित पवनों का
उपवन में तब स्नेह भाव से
पल्लव नहीं हिला करते हैं।

रसना को मधुरस से धो लें।
जाति-धर्म का विष मत घोलें।
जिस पावन धरती पर जन्में
उस भारत माँ की जय बोलें।

ऊँचे पर्वत की मालाएँ।
सागर के अंतस ज्वालाएँ।
इस धरती को पावन करतीं
गंगा यमुना की धारााएँ।

जब अतीत के पन्नें खोले।
मातृ भूमि का दर्द टटोलें।
प्राण जिन्होंने दिए राष्ट्र-हित,
अमर शहीदों की जय बोलें।

गरज गरज कर आते बादल।
नभ में धूम मचाते बादल।
लाकर के नदियों से पानी
बच्चों को नहलाते बादल।

दूर देश से आते बादल।
मन को बहुत लुभाते बादलां
आसमान में रंग-बिरंगे
इन्द्रधनुष बन जाते बादल।

भूरे बादल काले बादल।
कजरारे घुँघुराले बादल।
झम झम झम झम बरस रहे हैं
होकर के मतवाले बादल।

नव किसलय में छाई सी है।
अल्हड़ मन सकुचाई सी है।
फिर भी तन-मन में मादकता
मधुऋतु ने ढलकाई सी है।

फली-फली गदराई सी है।
मन ही मनन हर्षाई सी है।
लगता जैसे नवल चेतना
पात-पात पर छाई सी है।

मौसम में अँगड़ाई सी है।
हर कलिका मुसकाई सी है।
भोले-पन के भी चिंतन में
लगती कुछ तरुणाई सी है।

काली काली रात
कहाँ है।

झमझम झम
बरसात कहाँ है।
धैर्य यक्षिणी
को बँधवाए
मेघों में वह
बात कहाँ है।

पावस का
उपहार कहाँ है।
शीतल सुखद
बयार कहाँ है।
कहाँ जुगुनुओं की
वह जगमग
झींगुर की
झनकार कहाँ है।

निर्मल सरल स्वभाव कहाँ है।
जन जीवन में चाव कहाँ है।
सर्दी में घर के बाहर अब
जलता हुआ अलाव कहाँ है।

सरकंडों के ढेर कहाँ है।
झरबेरी के बेर कहाँ है।
साथ-साथ रहते थे मिलकर
जुम्मन भगत सुमेर कहाँ है।

बचपन का वह गाँव कहाँ है।
घनी नीम की छाँव कहाँ है।
प्रात-काल आती मुँडेर से
कौओं की वह काँव कहाँ है।

ऊपर-ऊपर चहल-पहल है।
लेकिन अंदर हृदय विकल है।
जीवन की आपा-धापी में
सूना मन का शीश-महल है।

सूखा कहीं कहीं जल-जल है।
नदियों का दूषित आँचल है।
घिरती नहीं घटाएं नभ में
सावन का जीवन निष्फल है।

निर्मल कहाँ सरोवर का जल।
मुरझाते सरोज-दल प्रतिपल।
मछली करें किलोल कहाँ अब,
रिक्त पड़ा है मन का दल दल।

सुमनों सी सुकुमार ज़िन्दगी।
सपनों का संसार जिन्दगी।
कभी पपीहा की तड़पन तो
भँवरों की गुन्जार जिन्दगी।

नव चिंतन उपहार जिन्दगी।
लगती कभी उधार जिन्दगी।
सच के दर्पण में जब देखा
निकल बड़ी लबार जिन्दगी।

पल-पल होती क्षार जिन्दगी।
पुष्प कभी है खार जिन्दगी।
छिद्रों से परिपूरित नौका
जिस पर हुई सवार जिन्दगी।

रहती कभी
निढ़ाल जिन्दगीां
भरती कभी
उछाल जिन्दगीां
अपनी नहीं
सिर्फ औरों की
लगती है
खुशहाल जिन्दगी।

नव आशा
संचार जिन्दगी।
सपनों से
मनुहार जिन्दगी।
लगती जीवन के
पतझड़ में
परकीया
अभिसार जिन्दगी।।

तिनके सा नित
बहता जाये।
हिचकोलों को
सहता जाये।
क्षण भर नहीं
ठहरता जीवन
धाराओं से
कहता जाये।।

जीवन सुख की
सेज नहीं है।
मधुरस से
लबरेज नहीं है।
प्रणय गीत किस
पर लिख डालूँ
कोरा उर का
पेज नहीं है।

वाचिक त्रग्विणी

(मापनी–212 212 212 212)

रुख गरम हो रहे हैं
नरम चाहिए।
बेधरम हो रहे है
धरम चाहिए।
कह रही राष्ट्र की
एकता अस्मिता
चित्त सत्यम शिवम
सुन्दरम चाहिए।

हो पवन स्वच्छ निर्मल
गगन चाहिए।
प्रेम सौहार्द का
संचलन चाहिए।
कर्म के मर्म में
मानवी धर्म में
देश-हित स्वस्थ चिन्तन
मनन चाहिए।

दूर तक व्योम में
पागलों की तरह।
हर भटकते रहे
बादलों की तरह।
खो गए एक अनजान
सी राह में
घाटियों से घिरे
अंचलों की तरह।

लोग जो भी मिले
फासलों की तरह।
मुस्कराते हुए
दिलजलों की तरह।
इस तरह में उपेक्षित
रहा उम्र भर,
सोमरस की चुकी
बोतलों की तरह।

पाँव ब्रज भूमि में
        घर गयी राधिका।
प्रीति में रागिनी
        भर गयी राधिका।
मर गयी राधिका,
        श्याम के प्यार में
प्यार को पर अमर
        कर गयी राधिका।

लोक का हर ज़हर
        पी गयी राधिका।
ज़िन्दगी इस तरह
        जी गयी राधिका।
ब्रह्म के ज्ञान को
        आत्म के ध्यान को
प्रेम के धाग से
        सी गयी राधिका।

श्याम के प्यार में
        बावरी हो गयीं।
छलछलाती हुयी
        गागरी हो गयीं।
चित पर रंग ऐसा
        चढ़ा श्याम का
गौर से मैं सखी
        साँवरी हो गयीं।

नेह जल से भरी
        आँजुरी हो गयीं।
रूप रस रंग की
        माधुरी हो गयीं।
प्रीति के स्वर हृदय
        से निकलने लगे
श्याम की मैं सखी
        बाँसुरी हो गयीं।

है गगन में मगन
घूमता चन्द्रमा।
ज्यों खुशी से भरा
झूमता चन्द्रमा।
चाँदनी से धुले
चंद्र-मुख देखकर
इस धरा का बदन
चूमता चन्द्रमा।

हर्ष के बीज फिर
बो गया चन्द्रमा।
वर्ष भर का कलुष
धो गया चन्द्रमा।
चौथ के पर्व पर
लग रहा आज ज्यो
फिर अमृत का कलश
हो गया चन्द्रमा।

हो रहा है उसे
देखते जाइए।
नेह की पौध को
रोपते जाइए।

दोष-गुण ज्ञान-अज्ञान
ही सृष्टि है
सृष्टि की दृष्टि को
भाँपते जाइए।

हों हवाएं विषम
झेलते जाइए।
मुश्किलें राह की
ठेलते जाइए।
जिन्दगी एक नाटक
महज़ कुछ नहीं
रोल जो भी मिले
खेलते जाइए।

पर्व में हो खुशी
की लहर साथियों।
शाम हो या सहर
दोपहर साथियों
दूरियाँ किन्तु उनसे
जरूरी बहुत
मज़हवी घोलते
जो ज़हर साथियों।

मीत को यदि गले
से मिले क्या मिले?
गुल घरों की छतों
पर खिले क्या खिले?
पाठ जो एकता
का पढ़ाते नहीं
व्यर्थ हैं वे सभी
धर्म के काफ़िले।

लोग आते रहे लोग जाते रहे।
दूर से तुम खड़े मुस्कराते रहे।
अंधकारों भरी रात में सिर्फ़ तुम,
जुगुनुओं की तरह टिमटिमाते रहे।

जो कहो कुछ चलन में उतारा करो।
कुछ कहो कुछ सुनो कुछ गवारा करो।
इन निगाहों की नीयत बदल दीजिए,
मनचलों की तरह मत निहारा करो।

बेसुरे कनसुरे राग मत रेंकिए।
बेवजह दाँव पर दाँव मत फेंकिए।
जब लगी आग हो तो करो कुछ जतन
दूर होकर खड़े हाथ मत सेंकिए।

प्रीति के पंछियों
को जगाया नहीं।
गीत दिल से कभी
गुनगुनाया नहीं।
कागजों तक रही
आपकी साधना।
प्रेम का दीप उर में
जलाया नहीं।

मत सुनाओं किसी
को हृदय की व्यथा।
आइने को कभी भी
न लें अन्यथा।
कर्म ही भाग्य है
भाग्य ही कर्म है
एक शाश्वत अटल
सत्य है सर्वथा।

एक आशा किरण
है निराशा नहीं।
ज़िन्दगी रोशनी
है कुहासा नहीं
ज़िन्दगी खूबसूरत
लगे किस तरह
आपने ठीक से
जब तराशा नहीं।

आइने में स्वयं
को निहारा नहीं।
जो कहा आचरण में
उतारा नहीं।
मोह के दलदलों
में फँसे रह गए
राम को आर्त-स्वर
में पुकारा नहीं।

राम धारी मिले
        कुछ निराला मिले।
ज्ञान का लोग ओढ़े
        दुशाला मिले।
खुद अँधेरी गली
        में भटकते मगर
रोड पर बाँटते
        वे उजाला मिले।

प्रेम का जो अमृत
        वह पिया नहीं।
एक पल स्वस्थ जीवन
        जिया ही नहीं।
क्या करेंगी भला
        आपकी मन्नते
जब कभी कुछ किसी को
        दिया ही नहीं।

चम चमाते हुए
        पत्थरों से लगे।
आदमी टेन्ट के
        बिस्तरों से लगें।
भाव कलुषित बदलते
        न मिटते कभी
ज्यों शिला पर लिखे
        अक्षरों से लगे।

बंजरो की तरह
        हो गया आदमी।
खंजरो की तरह
        हो गया आदमी।
खंडहर ज्यों तिलिस्मी
        दिखें स्वप्न के
मंजरो की तरह
        हो गया आदमी।

तुम छलों पर तुम्हें
मैं छलूँगा नही।
रंच भर लक्ष्य से
भी टलूँगा नहीं
एक पत्थर - हृदयतम
समझ लो भले
बर्फ सा किन्तु तिल तिल
गलूँगा नहीं।

व्याधियों आँधियों
से हिलूँगा नहीं।
मन-कुटिल दम्भियों
से मिलूँगा नहीं।
हूँ अकेला भले
झूठ के गाँव में
सत्य के होठ को
मैं सिलूँगा नहीं।

ज़िन्दगी का अभी
कुछ मजा लीजिए।
जो बचे पल उन्हें
ही सजा लीजिए।
टूट जायेगी फिर
साँस की बाँसुरी
बज सके यह जहाँ
तक बजा लीजिए।

प्रेम में क्षेम की
साधना कीजिए।
नेह की भावना
को घना कीजिए।
झाँकती प्यार से
चन्द्र की रश्मियाँ
उर झरोखे कभी
बंद ना कीजिए।

डगमगाते कदम
को सँभाला नहीं।
ग़म उछाला गया
है निकाला नहीं।
रात में रुक लिए
प्रात में चल दिए
दिल हमारा कोई
धर्मशाला नहीं।

जो तमों से डरे
वह उजाला नहीं।
प्यार की है कहीं
पाठशाला नहीं।
प्रेम विष घूँट भी
है अमृत का कलश
सोम-रस का भरा
प्रेम प्याला नहीं।

हर तरफ बस कुहासा
घिरा देखिए।
भोर का सिर्फ छूकर
सिरा देखिए।
घूमता हर किसी का
बदन चूमता
शीत फिर हो गया
सिरफिरा देखिए।

सूर्य की हर किरण
अनमनी हो गयी।।
पूष की रात नीरव
घनी हो गयी
दिन हुए एक लघु
मुक्तिका की तरह
रात लम्बी जटिल
मापनी हो गयी।

देव को अनचढ़े,
अक्षतों की तरह।
रिक्त जल से उपेक्षित,
तटों की तरह।
कुछ अटकती
-भटकती रही ज़िन्दगी
मापनी से हटे,
मुक्तकों की तरह।

कागजों के धुले
अक्षरों की तरह।
मूर्ति से टूटकर,
पत्थरों की तरह।
लग रही ज़िन्दगी,
ये तुम्हारे बिना
खंडहर हो गए,
मंजरों की तरह।

आह है ज़िन्दगी,
वाह है ज़िन्दगी।
कंटको से भरी,
राह है ज़िन्दगी।
पार करना सरल,
पर समझना कठिन
सिन्धु के गर्भ की,
थाह है जिन्दगी।

हार है ज़िन्दगी,
खार है ज़िन्दगी।
धार है और पत
-वार है ज़िन्दगी।
सार है ज़िन्दगी,
शायरों के लिए
कायरों के लिए
भार है ज़िन्दगी।

छाँव है ज़िन्दगी,
धूप है ज़िन्दगी।
नेह-जल से भरा,
कूप है ज़िन्दगी।
मोह के जाल में,
फड़फड़ाते हुए
जीव के कर्म का,
रूप है ज़िन्दगी।

क्रोध है ज़िन्दगी,
बोध है ज़िन्दगी।
मत कहो एक अव
-रोध है ज़िन्दगी।
ज़िन्दगी भोग है,
भोगियों के लिए
योगियों के लिए
शोध है ज़िन्दगी।

हास-मृदु अर्थ विकसित
कली की तरह।
देखनी काव्य की
लेखनी की तरह।
भोर के नम क्षितिज
से तुम्हारे नयन-
बोलनी श्याम की
बाँसुरी की तरह।

साँस में ही बसा लूँ
पवन की तरह।
गुनगुनाता रहूँ
फिर भजन की तरह।
जाहनवी के तटो
से तुम्हारे अधर
चाहता चूम लूँ
आचमन की तरह।

रात भर हम जले, दीपकों की तरह।
शब्द की खोज में, लेखकों की तरह।

स्वर सजाते रहे, आपकी याद में
स्वॉति की चाह में, चातकों की तरह।

बर्फ से ढक रहीं, चोटियों की तरह।
जल जलों में फँसी, रोटियों की तरह।
हम विखरते सँवरते, रहे उम्र भर-
खेल शतरंज की, गोटियों की तरह।

नेह-जल से भरे, बादलों की तरह।
ज़िन्दगी हम जिये, हौसलों की तरह।
चित्त ज्यों एक, मधुमास सा हो गया
मुस्कराते रहे, कोपलों की तरह।

विधाता छंदाधारित
मापनी 1222 1222 1222 1222

हिमालय की भुजाओं में
दिखी किलकारती गंगा।
धरा करती परम पावन
जहाँ पग धारती गंगा।
नज़र जाती जहाँ तक रेत
में लहरा रहा आँचल
हृदय में नेह की सीमा
सदा विस्तारती गंगा।

हमारे देश की अंतर्व्यथा
पहचानती गंगा।
समूचे राष्ट्र को समझो
उदर को पालती गंगा।
घिनौने लग है घाट
नगरों के प्रदूषण से
पड़े हैं अस्थियों के ढेर
जिनको तारती गंगा।

निकल कर सिन्धु से हर मेघ
आवारा नहीं होता।
उदर में बादलों के जल
कभी खारा नहीं होता।
निजी पुरुषार्थ के बल पर
सदा जीवन जिया जिसने
थका हारा भले हो
किन्तु बेचारा नहीं होता।

सितारों से सजा आँगन
किसे प्यारा नहीं होता।
भिगोता भीगता सावन
किसे प्यारा नहीं होता,
लहू देकर सदा हमने
तिरंगे का बचाया है
तिरंगे का तिरंगा पन
किसे प्यारा नहीं होता।

चटकती किन्तु पत्थर की
पिघलती है नहीं छाती।
कभी उजड़े चमन में
झूमकर कोयल नहीं गाती।
सदा खिलते कमल दल स्वच्छ
जल से ही सरोवर में
सड़े फूलों के ढेरों से
कभी खुशबू नहीं आती।

सहेजे नेह के बिन रात भर
दीपक नहीं जलते।
स्वपथ पर अश्व अड़ियल जो
कभी दो डग नहीं चलते।
बहुत ही खूबसूरत वृक्ष
कुछ होते बगीचों में-
नियति उनकी मगर होती
नहीं वे फूलते-फलते।

कहीं वर्षा नहीं होती
कहीं सर्दी नहीं होती।
न गिरतीं स्वाँति की बूँदें
उपजते हैं नहीं मोती।
सभी उथला गयीं नदियाँ
रहीं जलमग्न जो पहले-
मुकद्दर कोसती नौका
किनारे पर पड़ी रोती।

लगे जब चोट दिल-दर्पण
सहज ही फूट जाता है।
कभी लगता कि किस्मत का
सितारा टूट जाता है।
समन्दर सी उमड़ती हैं
नयन में अश्क की लहरें
दिशाएँ भी भटक जातीं
किनारा छूट जाता है।

बहुत तारीफ हम भी आईने की,
सुन चुके यारो,
मगर कम्बख्त ये अक्षर
सदा उल्टा दिखाता है।
कभी जब रूबरू होता
किसी भी आईने से जब,
तभी मजबूर होकर सत्य से,
पर्दा हटाता है।

जवानी को रिझाता है
बुढ़ापे को खिजाता है।
अहंकारी बहुत दर्पण
नहीं झुकता-झुकाता है।
नियति के चक्र में कुछ
इस तरह ढाला गया शीशा
जरा सी चोट लगते ही
मुकद्दर फूट जाता है।

अगर नीयत सलामत हो
बगावत हो नहीं सकती।
दरिन्दों पर खुदा की भी
इनायत हो नहीं सकती
कहर बरपा मगर इसकी नहीं
कोई खबर इनको
बहाकर खून, अल्लाह की
इबादतत हो नहीं सकती।

लहू से जो नहाए वे,
अमन की बात करते हैं।
जमीं को छोड़कर अब तो
गगन की बात करते हैं।
हमारी सरज़मी पर भी
बहुत गद्दार है ऐसे
वतन को लूटते अहले-
-वतन की बात करते हैं

सु-मन से भी कृपण होते
नमन से भी कृपण होते।
यहाँ कुछ लोग मधुरिम दो,
वचन से भी कृपण होते।
उढ़ाते वस्त्र नदियों को
बहाते धार में लेकिन
गरीबों के लिए दो गज
कफ़न से भी कृपण होते।

मज़ारों की कहीं बस्ती
सितारों की कहीं बस्ती।
सड़क के बीच में फैली
हजारों की कहीं बस्ती।
लुटेरों चमकती बस्तियाँ
दिखतीं बहुत लेकिन
न मिलती ढूँढने से भी
उदारों की कहीं बस्ती।

लिखा हर पृष्ठ मिलता है
नहीं सादा निकलता है।
मुहल्ले की गली में अब
नया दादा निकलता है।
गज़ब का यह ज़माना है
जिसे हम आँकते कमतर
मगर वह तो ज़रूरत से
कहीं ज्यादा निकलता है।

किया महसूस तो हर
साँस पर पहरा निकलता है।
टटोला दूसरे का जख़्म
कुछ गहरा निकलता है।
सुनाने जब लगे अपनी
कभी दुख दर्द की बातें
यकीं मानो वहाँ हर आदमी
बहरा निकलता है।।

समय की उर्वरा भू पर
प्रगति के बीज जो बोते।
गए-गुज़रे ज़माने की
सड़ी लाशें नहीं ढोते।
अकेला ही सदा भारी
पड़ा करता हजारों पर
रहे निर्द्वन्द सिंहों के
कबीले ही नहीं होते।

प्रणय के पंख होते हैं
प्रणय पैदल नहीं चलता।
बिखर जाए भले ही टूटकर
तिल-तिल नहीं गलता।
कभी होता प्रखर मद्धिम
ग्रहण लगता कभी लेकिन
किसी युग में कभी भी
प्यार का सूरज नहीं ढलता।

लुटाया प्यार में सब कुछ
मगर अरमान बाकी है,
चुकाया है बहुत लेकिन
अभी लागान बाकी है।
कभी तोड़ा कभी जोड़ा गया
दिल के खिलौने को,
मुहब्बत में मगर यारों
अभी भी जान बाकी है।

हुए वरदान सब झूठे
फ़क्त अनुदान बाकी है।
नवाबों में नवाबी की
अभी तक शान बाकी है।।
हुई सुनसान अब जो
जश्न में डूबी रहीं राते
हवेली हो चुकी खँडहर
मगर पहचान बाकी है।

कलम चाहे तो मौसम को
गरम कर दे नरम कर दे।
कलम चाहे तो हर तूफान
की रफ्तार कम कर दे।।
कलम उठ जाय तो शमसीर बनकर
शिर कलम कर दे।
कलम करुणित क्षणों में
पत्थरों सी आँख नम कर दे।।

कलम हँसती हँसाती है
कलम लोरी सुनाती है।
कलम अपने इशारे पर
ज़माने को नचाती है।।
कभी ग़म के समन्दर में
कलम जब डूब जाती है।
ठहर जाती लहर हलचल
कलम जब गुनगुनाती है।।

मुसीबत की घड़ी में फ़र्ज
कुछ हमको निभाना है।
लगे जब आग जंगल में
कठिन होता बुझाना है।
अभी मौका बहुत चिनगारियों
से बच निकलने का
हमें निज राष्ट्र को बढ़ते
प्रदूषण से बचाना है।

चमन फिर खिलखिलाएगा
धरा फिर मुस्कराएगी।
सुबह की रौशनी होगी
अँधेरी रात जाएगी।
लगेगी पार निश्चित घोर
संकट के समन्दर से-
हमारे धैर्य की नौका
नहीं यदि डगमगाएगी।

नयन को जो न नम कर दे
कहानी हो नहीं सकती।
न आए राष्ट्र हित में जो
जवानी हो नहीं सकती
मुहब्बत ही नहीं जो टूट
दर्पण सी बिखर जाए-
न महके रात भर वह
रातरानी हो नहीं सकती।

कहीं पर मिल गए साथी
कहीं पर छूट जाते हैं।
चमकते व्योम के तारे
समय पर टूट जाते हैं।
खिलौने खूबसूरत से
बने है काँच से लेकिन
सहे जो लाख यत्नों से
मगर ये फूट जाते हैं।

मुहब्बत प्यार की बातें
मुझे अच्छी नहीं लगती।
किसी मनुहार बातें
मुझे अच्छी नहीं लगती।
सिमट कर रह गई उल्फ़त
फ़कत किस्सा कहानी में-
लिखीं किरदार की बातें
मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

तुम्हारा प्यार भी क्या प्यार
बस केवल छलावा है।
किसी ज्वालामुखी की कोख
-का ज्यों तप्त लावा है।
ज़माने में दिखाई दे रहा है
इश्क भी अब तो
किसी आतंकवादी की
कलाई का कलावा है।

कहीं दुनिया के मेले में
अकेले छूट ना जायें।
खिलौनों सा उछालो मत,
गिरें तो फूट ना जाये।
अधिक मत खींच देना स्नेह
-सम्बन्धों की डोरी को-
हमारे सूत के धागे,
पुराने टूट ना जायें।

बने जो स्नेह के रिश्ते,
निभाए हैं निभायेंगे।
गुजारे साथ जो लम्हे,
हमेशा याद आयेंगे।
तुम्हारे प्यार की खुशबू
हमारे साथ में होगी-
हमारी चाह के मोती
तुम्हारे साथ जायेंगे।

नदी निज आत्म-बल से ही
कछारों से सदा लड़ती।
प्रवाहित जो विचारों की
कभी धारा नहीं सड़ती।
चले जो हौसला लेकर
निरंतर कर्म के पथ पर-
उन्हें बैसाखियों की फिर
जरूरत ही नहीं पड़ती।

नहीं जो काटते मन से
उन्हीं का दिन नहीं कटता
हमारी सोच से सुख-दुख
कभी बढ़ता कभी घटता।
बिना पुरुषार्थ के कुछ भी
नहीं होता यहाँ हासिल-
भरोसे भाग्य के बैठे
कभी छप्पर नहीं फटता।

धरा पर त्रासदी फैली
गगन की बात करते हो।
बढ़ाकर द्वेष की खाई
अमन की बात करते हो।
जलाकर झुग्गियाँ अपना-
-महल रोशन किया तुमने-
जिन्हें ऊँचा उठाने की
जतन की बात करते हो।

अँधेरों के कुशासन में
उजाले डर रहे होंगे।
जहाँ ईमान वाले लोग
भूखे मर रहे होंगे।
हवा का रुख वयां करता
अभी वह वक़्त आएगा-
बेचारे हंस कौओ की
गुलामी कर रहे होंगे।

चित्त भ्रमित रहता यौवन की
चढ़ती हाला में।
रोल बदल जाते जीवन की,
नाटक-शाला में।
रोक सका कब कौन स्वयं को,
बरबस खिंच जाता
बड़े-बड़ों का मन कंचन-मृग,
की मृग-छाला में।

अपने को उलझा लेती है,
मकड़ी जाला में।
खुद जाते जलने परवाने,
दीपक ज्वाला में।
बहुत सुरक्षित इस जीवन का,,
कवच बनाते पर-
मृत्यु-दूत बनकर आ जाता,
तक्षक माला में।

विष्णु पद छंद (चौपाई +10 = 26 मात्र)

जब निहारती पर मयूरी
नाच नहीं पाती।
किन्तु कलूटी कोयल दिन भर
मस्ती में गाती।
धरती पर मेहनतकश अक्सर
सो जाते लेकिन-
धनवानों को मखमल पर भी
नींद नहीं आती।

जीवन में सुख दुखा की सबको
मिलती सौंगातें।
बाँहों में अथवा आहों में,
कट जाती रातें।
हो जाता है शान्त सुनामी
लहरों का नर्तन
चार दिनों तक बतियाने को,
रह जाती बातें।

अवरोधों से मन-पंछी तू
मत इतना घबड़ा।
उड़ने को पूरा का पूरा
खाली व्योम पड़ा।
शान्ति और सुख किसको मिलता
परबस जीवन में।
मत इतराए देख देखकर
सोने का पिंजड़ा।

नित्य तुम्हारी राह देखता
उपवन हरा-भरा।
नहीं लगा झरनों की मधुरिम
कलकल पर पहरा।
गुंजित वन पर्वत घाटी में
खग-कुल का कलरव-
रवि की सतरंगी किरणों से,
चमके वसुंधरा।

भीषण गर्मी में भी हमने
पंखा नहीं झला।
हम श्रम-साधक हमको कोई
मौसम नहीं खला।
गिरते तुम अक्सर जीवन की
पक्की राहों में
कीचड़ की फिसलन में अपना
पाँव नहीं फिसला।

अपनी धुन में मस्त किसी का
करता कौन भला।
भ्रष्ट लोग बदले पर
भ्रष्टाचार नहीं बदला।
कहते थे जो क्षीर सिन्धु-
-लायेंगे धरती पर-
लेकिन उनका पानी तो
सबसे खारी निकला।

उड़ते है स्वच्छन्द परिन्दे,
निज बल-बूते पर।
बना लिया करते जो तिनके
जोड़-जोड़ कर घर।
जग में कुछ करते जिनका
स्वाधीन रहा तन-मन।
राम-राम रटते तोते
जो पिंजरो के अंदर।

समुज्वला धरती का आँचल
नित नवीन होता।
पर आलोकित शशि का दिन में
मुख मलीन होता।
अंतर्मन को शान्ति नही
मिलती अनुदानों से-
परजीवी का जीवन अक्सर
दीन हीन होता।

नूतन हुआ विहान लगा ज्यों,
जीवन नया मिला।
स्वप्न-लोक के अवसादों का,
ढहने लगा किला।
नव ऊर्जा भरती हैं प्रतिदिन,
सूरज की किरणें-
हृदय सरोवर में फिर कोई,
सुन्दर कमल खिला।

ओस कणों से गीला लगता,
ऊषा का आँचल।
अलसाया सा पवन कदम ज्यों,
धरता सँभल-सँभल,
झरनों की कल कल कानों में,
भरती है प्रतिध्वनि-
चिड़ियों के कलरव से मानों
चहक उठा जंगल।

दिल पर जब आघात लगे तब,
कैसा लगता है?
मन में जब संताप बढ़े तब,
कैसा लगता है?
औरों के घर रहे जलाते,
जीवन भर लेकिन-
अपने घर में आग लगे तो,
कैसा लगता है?

हुए तिरष्कृत अपने से जब,
कैसा लगता है?
बढ़े पड़ोसी का धन-वैभव
कैसा लगता है?
नहीं अपेक्षित मिला कर्म-फल,
जीवन में जब भी-
दिल पर रखकर हाथ कहो रब,
कैसा लगता है।

दुर्गम पथ भी उस मानव का,
अतिशय सुगम हुआ।
बड़े-बुजुर्गों की जिसको नित,
मिलती रही दुआ
मिली विजय श्री उसे हमेशा,
निश्चित जीवन में-
संकट के झंझावातों ने,
उसको नही छुआ।

अहंकार घायल हो जाता,
कुरुक्षेत्र रण में।
प्राण गँवाते देखे जाते,
बेढ़गे प्रण में।
सदियों तक प्रायश्चित करता,
द्रोणी सा योद्धा-
भरी हुई शिक्षाएं इस,
मिट्टी के कण-कण में।

आदर्शो का पाठ पढ़ाना
मुझे नहीं आता।
और दोहरे मापदण्ड का
इल्म नहीं भाता।
आत्मज्ञान परमात्म ज्ञान का
मकड़ जाल दुस्तर-
ब्रह्म-सूत्र के अनुवादों तक
पहुँच नहीं पाता।

कभी अभावों में अपना मन
कर्द नहीं होता।
कुटिल पवन के झोकों में तन
सर्द नहीं होता।
कदम कदम पर मिलीं ठोकरें,
इतनी पैरों को-
पथरीली राहों पर इनमें,
दर्द नहीं होता।

कौन लोक को चले गये तुम,
बादल बरसाती।
प्यासी धरती की क्या तुमको
याद नहीं आती।।
स्वल्प नीर में खिलती पुरइन
फिर फिर मुरझाती।
देख सरोवर तटबंधो की
दरक रही छाती।।

धरती पर जीवन लगता है
जैसे डरा डरा।
लगा रहा हो मानो कोई
साँसों पर पहरा।।
नहीं आर्द्रता नील गगन में
दिखता धुंध भरा।
हुई निर्जला, शस्य श्यामला
सजला वसुंधरा।।

सुख में अक्सर रहता दुख की
यादों पर पहरा।
चलता रहता जीवन फिर भी
लगता है ठहरा।
बनतीं और सिमटती लहरें,
मिट जाती लेकिन-
जान नहीं पातीं सागर में
जल कितना गहरा।

नही सत्य का सूर्य वहाँ
आलोक नहीं होता,
विगत क्षणों पर विज्ञजनों को
शोक नहीं होता।
रचते जो सोपान हमेशा
जीवन के सुंदर-
उनके चिन्तन में कोई
परलोक नहीं होता।

मौसम के तेवर कुछ बदले
बदले लगते है।
दिखी सिसकती धूप सूर्य कुछ
कुचले लगते हैं।
नवयौवन की देहलीज पर
चढ़ती सर्दी को-
अच्छे-खासे कम्बल दुबले-
-पतले लगते है।

हिम श्रंगो को छूकर कर्कश
शीत हवा आती।
नहीं एक से दिन रहते हैं
हमको समझाती।
हो जाते निश्तब्ध मार्ग सब
जीवन वन उपवन-
शीत-काल में चिड़ियों की भी
बोली थम जाती।

ठंडक के मौसम में कोई
मधुर प्रसंग लिखो।
शिशिर काल अब दौड़ा रहा ज्यों
चढ़ा तुरंग लिखो।।
गहरी घाटी उन्नत से
पर्वत के श्रृंग लिखो।
जिस पर चढ़ी हुई बर्फी ली
चोली तंग लिखो।

शीत लहर की भरी जवानी
भरी उमंग लिखो।
एक अकेली सकल सृष्टि से
करती जंग लिखो।।
तालाबों नदियों के देखो
कटहे अंग लिखो।
मचा हुआ सर्दी के मौसम
का हुड़दंग लिखो।

रग बदलने लगे हृदय के
भावों के अक्षर।
लगे पहुँचने फिर बक्सों में
गरम-गरम बिस्तर
शीत काल के भय से छुपकर
सहमे कोने में-
पुर्नमिलन के गीत सुनाने
लगे वही मच्छर।

पड़ा शिशिर कमजोर
बसंती मौसम के आगे।
गुँथे हुए रवि की किरणों में
रेशम के धागे।
लतिकाओं पर कोमल कलियाँ
खिलने को आतुर
मधु ऋतु में लोलुप भँवरों के,
भाग्य पुनः जागे।

झुलस रहा है तन-मन जीवन
पत्ता नहीं हिले।
नहीं पथिक को कहीं वृक्ष की,
शीतल छाँव मिले।
तपा रहीं सूरज की किरणें,
धरती अम्बर को-
मुररझाए बच्चों के कोमल,
चेहरे नहीं खिले।

ऊष्मित हुआ चुनावी मौसम,
फिर ग्लेशियर गले।
बड़े-बड़े मनहूस लोग भी,
लगने लगे भले।
रात प्रात हो या कि दोपहर,
खलता नहीं इन्हें-
बहुत दिनों के बाद नाग,
घर से बाहर निकले।

धरती जलती अम्बर जलता
सूरज जलता है।
नदियों के गर्भाशय में भी
बादल पलता है।
प्रखर रश्मियाँ फन फैलाए
नागिन सी लगती-
इनसे बचकर जैसे तैसे
जीवन चलता है।

जेठ मास की गर्म हवा तन-
-मन को झुलसाती।
भीषण गर्मी में धरती की
दरक रही छाती।
जल-तल नीचे खिसक रहा है
जल संकट गहरा
निर्मम होती प्रकृति दिनोदिन
बाज़ नहीं आती।

सार छंद (चौपाई + 12 = 28 मात्रा)

अंतर्मन के अंधकार को
हर लेती है कविता।
पत्थर से दिल में अपना घर,
कर लेती है कविता।
एक सूत्र में बाँध दिया है
सकल विश्व को जिसने-
धरती को अपनी गोदी में
भर लेती है कविता

कभी झाँकती कविता दूल्हन
के घूँघट के पट से।
टकराती जो कभी लहर बन-
-कर नदियों के तट से।
झंझावात छिपे रहते हैं
एक बूँद स्याही में-
सिंहासन भी हिल जाते हैं
कविता की आहट से।

काव्य सर्जना सरल, काव्य को,
जीना बहुत कठिन है।
रही धवल कविता की चादर,
दिखने लगी मलिन है।
जीत सका है नहीं उजाला,
अंधकार को अब तक-
फैल रहा अंधेर चर्तुदिशि
कहते अच्छा दिन है।

जुड़ी हुई धरती से कोमल-
दूब नहीं कुम्हलाती।
सरिता भी अंतस स्रोतों से,
निर्मल नीर बहाती।
लेकिन कुछ परजीवी बनकर
जीवन यापन करते-
अपने आश्रय-दाता को ही
अमर बेल खा जाती।

नये दौर में ठेठ पुराना
साज़ कौन सुनता है।
त्रेता या सतयुग की बातें
आज कौन सुनता है।
सभी जानते यह जीवन तो
रंग-मंच है लेकिन-
नक्कारों में तूती की
आवाज़ कौन सुनता है।

बड़े बुजुर्गो का सच पूछो
मान कौन करता है।
अपने मुख से औरों का गुण-
-गान कौन करता है।
दोष दूसरों के पढ़ लेना
बहुत सरल है लेकिन-
अपने अंदर की कमियों का
ध्यान कौन करता है।

जग में रहकर जग से ही
अनजान हुआ करते हैं।
देख सको तो पत्थर में
भगवान हुआ करते हैं।
जिभ्या पर आए शब्दों को
सोच समझकर कहना-
इस युग में दीवारों के भी
कान हुआ करते हैं।

प्रथक-प्रथक आचार और
व्यवहार हुआ करते हैं।
पुष्पित सजी डालियों में भी
खार हुआ करते हैं।
झूठी चाटुकारिताओं पर
चढ़ें फूल मालाएँ
सत्य मार्ग पर बिछे हुए
अंगार हुआ करते हैं।

नियमित सिंचित पौधे अक्सर,
गमलों में कुम्हलाते।
कैद कोठियों में प्रसून जो,
खुशबू नहीं लुटाते,
जुड़े हुए रहते जो धरती-
-माता के आँचल से,
जंगल में भी कटे हुए तरु,
हरे भरे हो जाते।

साधन होकर सत्कर्मों के,
बीज नहीं बो पाते।
प्रारब्धों की फसल देखकर,
मन ही मन पछताते।
ललक और जीने की किंचित,
शान्त नहीं होती है-
संचित संस्कारों से हम सब,
निज किरदार निभाते।

गीतों की रसधार बहाते, ये सावन के झूले।
सपनों के भी पंख लगाते, ये सावन के झूले।
नख से शिख तक सजी हुई इन, अल्हड़ बालाओं को-
आसमान तक सैर कराते, ये सावन के झूले।

तन-मन में उत्साह जगाते, ये सावन के झूले।
पथिकों का भी जी ललचाते, ये सावन के झूले।
चाहें जितना पेंग बढ़ा लो, लौट वहीं पर आना-
जीवन का विज्ञान सिखाते, ये सावन के झूले।

भर लो नव उत्साह हृदय में, सावन के झूलों से।
लहरों से टकराना सीखो, नदियों के कूलों से।
खुद अपनी भूलों से सीखों, जीवन पथ पर चलना-
हँसना सीखा रहे असिंचित, जंगल के फूलों से।

लावणी छंद (चौपाई + 14 = 30 मात्रा)

ममता भरे नयन माता के,
प्यारे-प्यारे लगते हैं।
टँके हुए जिनके आँचल में,
चाँद सितारे लगते है।
झंकृत होते तार हृदय के,
ऊर्जित करते प्राणों को-
शक्ति स्वरूपा जगदम्बा के,
जब जयकारे लगते हैं।

जब से आँचल थाम लिया है,
अंतर्मन में आती हैं
नया आत्म-विश्वास हृदय में,
आकर नित्य जगाती हैं।
माँ की महिमा को शब्दों में,
लिखना कहना है मुश्किल-
इतना देती स्नेह, झोलियाँ-
भी छोटी पड़ जाती हैं।

बेल पत्र पर बलि-बलि जाते
उनको कहते शिव बाबा।
नागों को भी गले लगाते
उनको कहते शिव बाबा।
सुख वैभव धन-धान्य बाँटते-
रहते सारी दुनिया को-
और स्वयं बेघर कहलाते
उनको कहते शिव बाबा।

त्याग तपस्या योग सिखाते
उनको कहते शिव बाबा।
स्नेह सुधा सब पर बरसाते
उनको कहते शिव बाबा।
संतों के दुख भंजन करते
संकट हरते देवों के-
विष का प्याला खुद पी जाते
उनको कहते शिव बाबा।

लगता घायल हृदय सत्य का
मिले झूठ के घावों से।
मिथ्या लहरें भी टकरातीं
रहतीं सच की नावों से
सदियाँ बीत गयीं है इसको
परिभाषित करते करते-
सृष्टि चक्र चलता है केवल
झूठे-सच्चे भावों से।

जीवन है संघर्ष पुरातन
कुसुमित नव मधुमास नही।
कर्मक्षेत्र से भी विरक्ति को
कहते हैं सन्यास नहीं।
साँसे सधी-बँधी चलतीं बस
आशाओं की डोरी से-
पथिक भ्रमित हो जाते अक्सर
जिन्हें आत्म-विश्वास नहीं।

धाराओं से बहना सीखो
झरनों से झरना सीखो।
दुष्कर्मो के परिणामों से
जीवन में डरना सीखो।
सब धर्मो का मूल मन्त्र यह
सद्ग्रंथों का सार यही-
अपनी खातिर किया बहुत कुछ
परहित में करना सीखो

मौसम और हवाओं का रुख,
देख देख चलना सीखो।
और समय के साँचे में भी
शनैः शनैः ढलना सीखो।
पत्थर बनकर जीने में कुछ
हासिल कभी नही होता।
बर्फीली चट्टानों से तुम
आतप में गलना सीखो।

चिन्तन करके इस दुनिया का,
लगता परम उदासी मन।
कभी कभी लगता है जैसे,
सचमुच यह सन्यासी मन।
योग भोग के समीकरण में,
जीवन को उलझा देता
राजमहल के भोग भोगता,
और कभी बनवासी मन।

सृष्टि चक्र के संचालन में,
नव जीवन का दाता मन।
जीव मात्र का खुद ही होता,
केवल भाग्य विधाता मन।
काशी से काबा तक जाता,
पावन किन्तु नहीं होता-
सौ सौ डुबकी गंगाजल में,
जाकर नित्य लगाता मन।

बहती नदी और जीवन की,
मिलती हुई कहानी है।
अंदर पानी बाहर पानी,
सब कुछ पानी-पानी है।
कहीं-कहीं पर गहराई तो,
कहीं-कहीं पर उथलापन-
कदम-कदम होता परिवर्तन
हर रास्ता अनजानी है।

तन भी निर्मल मन भी निर्मल,
निर्मल बहता रहता जल।
उर-वीणा का अनहद स्वर ही,
सरिता की मधुरिम कलकल।
दूषित पवनों के चंगुल में,
हृदय प्रदूषित हो जाता-
नगरों का पानी कर देता,
नदियों का मैला आँचल।

स्वच्छ दीखता चेहरा दर्पण
पर जब धूल नहीं होती।
निर्मल मन के भावों में भी
कोई भूल नही होती।
रोक लिया करते नाविक भी
नौकाओं की चालों को-
मौसम की संक्रमित हवा भी
जब अनुकूल नहीं होती

आशा कभी निराशा आती
जाती है अहसासों में।
धीर वीर स्थिर रहते अंतर
मन के दृढ़ विश्वासों में।
जीवन की प्रतिकूल धार में
जिन्हें तैरना आता है-
नहीं उलझते कभी लोक के
चुभते से उपहासों में।

विस्तृत नील गगन के अभिनव
रोज इशारे होते है।
जहाँ क्षितिज की कोरों के
अभिसार कुँवारे होते हैं।
स्नेह भावनाओं की छोटी
छोटी सी सौगातों से-
मन के आँचल पर चित्रित
साकार सितारे होते है।

जी करता है विस्तृत नभ को
अपनी बाहों में भर लूँ।
आलोकित हो ज्ञान प्रखरतम
अंधकार जग का हर लूँ।
अभिलाषा के पंखों में मन-
विहग हौसला भरता है।
जल से परिपूरित बदली का
उड़कर आलिंगन कर लूँ।

फूँक-फूँक पग धरने वाले,
हैं अब भी लेकिन कम हैं।
राष्ट्र-धर्म पर मरने वाले,
है अब भी लेकिन कम हैं।
स्वार्थ सिद्ध करने वालों की,
लाइन लगी हुई फिर भी-
पर हित में कुछ करने वाले,
है अब भी लेकिन कम हैं।

ज्ञान ध्यान में जीने वाले
है अब भी लेकिन कम हैं।
जख़्म हृदय का सीने वाले
है अब भी लेकिन कम है
बूँद अमृत की ढूँढ रही है,
भीड़ कुम्भ के मेलों में-
विष का प्याला पीने वाले
है अब भी लेकिन कम है।

अंध भक्त मत बनो किसी के
कुछ शक बहुत जरूरी है।
जैसे प्रेम-पंथ में थोड़ी
झक-झक बहुत जरूरी है।
सही गलत का कठिन आकलन
छल फरेब की दुनिया में-
इस युग में अतर्नयनों पर
ऐनक बहुत जरूरी है।

नेह-मान पाने को मधुरिम
बानी बहुत जरूरी है।
मंजिल तक जाने में रास्ता
जानी बहुत जरूरी है।
हरित धरा होती पानी से
पानी से जीवन होता-
साथ-साथ इन आँखों में भी
पानी बहुत जरूरी है।

धाराओं से लड़ न सकें उन
पतवारों का क्या होगा।
शासन की कठपुतली हों उन,
अखबारों का क्या होगा।
सत्ता को हथिया लेते जो
झूठे-सच्चे वादों से-
जनता को भरमाने वाली
सरकारों का क्या होगा।

बढ़े प्रदूषण केवल मिथ्या
जयकारों का क्या होगा।
आश्वासन के लगे हुए इन
अम्बारों का क्या होगा।
अपने पूज्य महापुरुषों को
धूर्त बताते मंचों से-
ऐसी ओछी राजनीति के
गद्दारों का क्या होगा।

शीत लहरियाँ टहल रही है
बौराई तरुणाई में।
सुबह-शाम तो कभी रात भर
रुक जाती पहुनाई में।
ठंडी धरती, नभ का आँचल
जब गीला हो जाता है,
धीरे-धीरे घुसने लगतीं
जर्जर फटी रजाई में।

बर्फीले पवनों ने जैसे
ली अँगड़ाई लगती है।
जिनके बल पर शीत काल की
सबल कलाई लगती है।
जकड़ लिया है जिसने आकर
खग-कुल का मधुरिम कलरव,
हरी-भरी आँगन की तुलसी
कुछ मुरझाई लगती है।

जटिल व्याकरण के सूत्रों में,
बँधना मुझे नहीं आता।
आकाओं के आगे पीछे
चलना मुझे नहीं आता।
मैं उन्मुक्त हवा का झोंका,
रहता अपनी मस्ती में-
अविरल धारा सा बहता हूँ
रूकना मुझे नहीं आता।

दया-पात्र बनकर जीवन में,
रहना कभी नहीं सीखा।
भरे गैस के गुब्बारे सा,
उड़ना कभी नहीं सीखा
दूब-घास सा रहा असिंचित,
जुड़ा हुआ हूँ धरती से-
परजीवी बन किसी पेड़ पर,
चढ़ना कभी नहीं सीखा।

कभी सरलता इन नयनों में,
फिर दृढ़ता सी लगती है।
कभी छलकते ज़ाम नशीले,
मादकता सी लगती है।
कभी-कभी आँखों को लगती,
सागर सी गहरी आँखें-
कभी नदी की लहरों वाली
चंचलता सी लगती है।

स्नेह-सिक्त प्रिय नयन तुम्हारे,
जग से न्यारे लगते हैं।
भीगी हुई भोर के जैसे,
सजल सितारे लगते हैं।
सुख-दुख भरी मंजिलें कितनी
तय कर डालीं आँखों ने,
फिर भी इनसे झाँक रहे कुछ,
स्वप्न कुवांरे लगते हैं।

स्नान-ध्यान कर अपना मस्तक
लोग टेकते गंगा में।
और शिकारी नौकाओं से
जाल फेकते गंगा में।
अपना-अपना कर्म धर्म है
अपना अपना जीवन है-
दुष्ट चिता में हाथ सेंकते
आँख सेंकते गंगा में।

श्रद्धावान लोग जाकर जौं
बो जाते गंगा जल में।
नष्ट जन्म-जन्मों के पातक
हो जाते गंगा जल में।
बने प्रदूषण मुक्त जाहनवी
की पावन धारा कैसे-
भ्रष्टाचारी लोग हाथ जब
धो जाते गंगा जल में।

स्वेटर जाकेट निकल पड़े फिर,
ठंडक की अगवानी में।
बहुत सुहानी लगती सर्दी
चढ़ती हुई जवानी में।
जीवन की सच्चाई दिखती,
खुले हुए फुटपाथों पर-
मन को भाती रात पूष की,
केवल किसी कहानी में।

जुड़ जाते कविता में अक्षर,
केवल हवा हवाई में।
और ढूँढते नकली सूरत,
चिंतन की परछाई में।
कैसे कटती रात शीत में,
कभी झुग्गियों से पूछो-
टकरातीं जब सर्द हवाएँ,
कम्बल और रजाई में।

ठंडे ठंडे से मौसम में
गरम गरम भातती खिचड़ी।
एक घड़ी में ही बनठन कर
सन्मुख आ जाती खिचड़ी।
प्रभु की आँखों के तारे उन
निर्धन बच्चों को छूकर-
मन ही मन निज परम भाग्य पर
गाती इतराती खिचड़ी।

जीवन के बढ़ते ढलान पर
तीक्ष्ण तंज कसती खिचड़ी।
सँभल सँभल कर कदम बढ़ाना
केशों से कहती खिचड़ी।
जाती है दुर्गन्ध दूर तक
जल जाते सारे चावल-
भूल समय की मर्यादा को
गुप-चुप जब पकती खिचड़ी।

नव कुसुमित पल्लवित हो गए,
तरु बौराए होली में।
मधुरस की बूँदों पर मधुकर,
फिर ललचाए होली में।
होली का हुड़दंग मचा है,
गलियों से गलियारों तक-
घूम रहे हैं सांड़ सैकड़ो,
पूँछ उठाए होली में।

कहीं गरजते कहीं बरसते
बादल छाए होली में।
फागुन की खुशियों में मौसम,
टांग अड़ाए होली में।
काम-धाम सब बंद पड़े हैं
फिर त्योहार मने कैसे-
निर्धन के बच्चे बैठे सब,
आश लगाए होली में।

हरिगीतिका छंद (26 मात्रा—5, 12, 19, 26वीं मात्रा लघु, अंत में लघु गुरु)

कवि-लेखनी पथ के किसी
अवरोध से रुकती नहीं।
कविता शिला का लेख
बन जाती कभी मिटती नही।
अभिशप्त होकर लुप्त
हो जाती कलम की धार तब-
मानव हृदय की पीर को जब
लेखनी लिखती नहीं।

कविता कभी भी सत्य के
पथ से अलग हटती नहीं।
यह ज्योति भीषण आँधियों के
वेग से बुझती नहीं।
मन के कभी तटबंध छू
सकती नहीं वह लेखनी-
जिसके उदर में वेदनाओं
की लहर उठती नहीं।

गीतिका—मापनी—2122 2122 2122 212

जो सुगन्धें दे सके वे
फूल अब खिलते नहीं।
इस चमन में प्यार के
पत्ते कहीं हिलते नहीं।
तोड़ने वाले सुमन को
हर जगह आते नजर-
स्नेह-जल से सींचने
वाले कहीं मिलते नहीं।

नेह के दीपक जलाये
बिन कभी जलते नहीं।
हौसले यूँ ही अँधेरों
के सहज ढलते नही।
प्रेम की धारा नहीं बहती
कभी मरुभूमि से-
जब तलक अभिमान के
हिम-ग्लेशियर गलते नही।

ग्रीष्म वर्षा शीत के मौसम
बदलते जायेंगे।
पुष्प जो मधुमास में
खिलते सभी मुरझायेंगे।
प्रीति के पंछी गए जो
छोड़कर अपना चमन-
किन्तु उनके गीत बेशक
हर जुबां पर आयेंगे।

है मगर लगती नही ये
खूबसूरत जिन्दगी।
हो गयी ज्यों पत्थरों की
आज मूरत जिन्दगी।
ज़िन्दगी में चैन की अब
साँस लेने के लिए-
दो घड़ी का भी नही
देती मुहूरत ज़िन्दगी।

खुद जले दिल दूसरों का
भी जलाते तुम रहे।
थी बहुत उथली नदी जिसमें
जिसमें नहाते तुम रहे।
तुम न पहुँचे हो अभी तक
पर्वतों के पास में-
दूर से ही देखकर
गर्दन उठाते तुम रहे।

ज़िन्दगी भर आँख से
आँखे चुराते तुम रहे।
राम जाने किस जगह
धूनी रमाते तुम रहें।
दो कदम भी चल न पाए
तुम वफ़ा की राह में-
उम्र भर बस दोष
गैरों पर लगाते तुम रहे।

आदमी से आज हटकर
हो गया है आदमी।
अनपढ़ा कोई शिलाक्षर
हो गया है आदमी।
डालती हैं प्राण झरनों की
मधुर कल-कल मगर।
क्या सुनेगा जो कि पत्थर
हो गया है आदमी।

आदमी के आज अंदर
सो गया है आदमी।
भीड़ में पहचान अपनी
खो गया है आदमी।
मानवी-सम्वेदना
इतिहास बनकर रह गई,
अब अजन्ता की गुफा सा,
हो गया है आदमी।

तपने लगा दिवाकर
चलतीं गरम हवाएँ,
झुलसा हुआ चमन है
कुम्हला रहीं लताएँ।
नभ को निहारते अब
सूखें पड़े सरोवर-
घनश्याम तुम कहाँ हो
पंछी तुम्हें बुलाएँ।

अब दीखता नहीं है
वह शबनमी सबेरा।
जल तल खिसक रहा है
संकट हुआ घनेरा।
यूँ बेरुखी प्रकृति यदि
करती रही धरा से-
होगा कठिन बहुत ही
इस भूमि पर बसेरा।

हम छंद रच रहे हैं
मुक्तक बना रहे हैं।
बिखरे हृदय पटल पर
अक्षर सजा रहे हैं।
हम खोजनें चले हैं
कुछ शब्द -मोतियों को-
गहरे समन्दरों में
डुबकी लगा रहे हैं।

ज्यों मूर्तिकार कोई
मूरत तराशता है।
बेजान पत्थरों में
जीवन निहारता है।
कवि क्षीर-भावना से
नवनीत खोजने में,
गागर कभी कभी तो
सागर उबालता है।

यह ज़िन्दगी समझ लो
सुन्दर सपन सलोना
आपात की घड़ी में
पलकें नहीं भिगोना।
ग़म का अगर ज़हर हो
पीना उसे अकेले-
दिल का कहीं किसी से
रोना कभी न रोना।

यह जिन्दगी निरंतर
बहती हुई नदी है।
अवरोध ठोकरों को
सहती हुई नदी हैं।
होती कहीं प्रदूषित
फिर स्वच्छ और निर्मल-
सुख-दुख भरी कहानी
कहती हुई नदी है।

अंतर्निहित हृदय की
हर पीर जानता हूँ।
अपनी गढ़ी हुई है
तकदीर जानता हूँ।
जो दूर कर रही अब
नज़दीकियाँ दिलों की-
किस चीज़ की बनी है
प्राचीर जानता हूँ।

मैं प्यार का पथिक हूँ
मैं प्यार ढूँढता हूँ।
खुशबू भरे पवन का
संसार ढूँढता हूँ।
भरता जहाँ हिलारें
जग कष्टमय समन्दर-
खुशियों का एक उसमें
परिहार ढूँढता हूँ।

नाविक वही पुराना
साहिल नया नया है।
है भागफल पुराना
हासिल नया नया है।
चेहरे सभी वही हैं
बदले नकाब केवल-
हर ज़ख्म तो पुराना
कातिल नया नया है।

सब घाट भी पुराने
पण्डे नये नये हैं।
झंडे वही पुराने
डंडे नये नये हैं।
जो लूट कल मची थी
वह बरकरार अब तक-
बस लूटमार के अब
फंडे नये नये हैं।

हर पर्व से निराला
यह पर्व दीप माला।
घर चौखटों छतों पर
फैला हुआ उजाला।
इस भाँति दीपकों से
जगमग हुई अमावस-
मानो धरा गगन का
ओढ़े हुए दुशाला।।

सजने लगीं दुकानें
फिर आ गई दिवाली।
फुटपाथ से गली तक
फिर छा गई दिवाली।
मन के पड़े हुए थे
इन शुष्क मरुथलों में-
खुशियों भरी सुराही
ढरका गई दिवाली।

क्षेम बिन साधना
अधूरी है।
प्रेम बिन प्रार्थना
अधूरी है।
पूर्ण निष्ठा बिना-
समर्पण के-
हर मनोकामना
अधूरी है।

प्यार बंधन बिना
अधूरा है।
मेघ गर्जन बिना
अधूरा है।
देव दुर्लभ
-कहा गया नर-तन-
ईश वंदन बिना
अधूरा है।

दर्द चुपचाप-
-सब सहा होगा।
और कुछ भी
नहीं कहा होगा।
एक भूचाल सी
रही दहशत-
प्यार का जब
किला ढहा होगा।

हर सितम जुल्म
सह लिया होगा
ज़िन्दगी किस तरह
जिया होगा।
आँख भीगी रही
सदा जिसकी
उसने हँसकर
ज़हर पिया होगा।

दिल में जज़्बात
हौसला होगा।
दीप जो रात भर-
-जला होगा।
उम्र भर जो लड़ा
अँधेरों से-
कर सका और
-का भला होगा।

सिन्धु का खुद-
-उदर दहा होगा।
बादलों ने नहीं-
-कहा होगा।
पत्थरों के हृदय
पसीजे जब,
एक झरना-
-तभी बहा होगा।

लोग क्या क्या
कमाल करते हैं।
रोज जीते हैं
रोज मरते है।
खार दिल में छिपे
बबूलों के-
किन्तु मुँह से
प्रसून झरते हैं।

घाट-घाटों का
नीर चखते हैं
उम्र भर गैर को
परखते हैं।
खुद अँधेरों में
ज़िन्दगी जिनकी-
जेब में आफताब
रखते हैं।

किन किताबों में
व्यस्त रहते हो।
किन हिसाबों में
व्यस्त रहते हो।
मन भ्रमर आपका
हुआ जब से-
बस गुलाबों में
व्यस्त रहते हो।

किन सवालों में
मस्त रहते हो।
किन खयालों में
मस्त रहते हो।
क्या ख़बर है तुम्हे
अँधेरों की-
तुम उजालों में
मस्त रहते हो।

उपमान– दोहा का विषम चरण + 10 = 23 मात्रा

मन की केवल सोच है
        क्या बढ़िया घटिया।
शाखू से बिकती अधिक
        लिप्टिस की खटिया।।
तने हुए पर्वत शिखर
        खड़े उपेक्षित से-
पुजती सालिग्राम की
        छोटी सी बटिया।

श्रद्धा है तो कम नहीं
        मन्दिर से मठिया
जहाँ काम आए छड़ी
        व्यर्थ वहाँ लठिया।
मंगलमय कल्याण मय
        सन्तों की संगत-
दुख प्रद ही होती सदा
        दुष्टों की चठिया।

सघन अँधेरी रात में
        सन्नाटा पसरा।
अश्रुपात नभ ने किया
        भीगी वसुन्धरा।
रवि किरणों के तीक्ष्णतम
        तीर हुए कुंठित-
शीत काल दलबल सहित
        रण में जब उतरा।

रजनी पाँव पसारती
        दिवस हुए छोटे।
धूमिल तारे दिख रहे
        ज्यों सिक्के खोटे।
आसमान ने ओढ़ ली
        कुहरे की चादर-
चन्द्र रश्मियाँ छिप गयीं
        मानो परकोटे।

पुनः सूर्य की रश्मियाँ
होने लगीं प्रखर।
खिली सुनहरी धूप फिर
स्वच्छ हुआ अम्बर।
सुन ऋतुराज-मयूर के
पैरों की आहट-
फन फैलाए शीत का
घटने लगा ज़हर।

दिवस सुहाने हो गए
बदल रहा मौसम।
कटु तेवर अब शिशिर के
दिखने लगे नरम।
ले मनसिज सँग सारथी
करके विश्व विजय-
मधुऋतु ने फिर सृष्टि में
फहराया परचम।

मंगल माया – 11, 11 त्र 22 मात्रा (मति से पूर्व आदि, त्रिकल)

गाना बाना और, तराना भूल गए।
अपने दिल का हाल, बताना भूल गए।
मौन हुई अनसुनी, चीखती पीड़ाएँ-
जो थे तीरंदाज, निशाना भूल गए।

धमा चौकड़ी शोर, मचाना भूल गए।
गलियों में भी घात, लगाना भूल गए।
चिड़ियाँ भी चालाक, हुई कोरोना में-
और शिकारी जाल, बिछाना भूल गए।

निकल गया जो दूर, जमाना भूल गए।
मिला नया जब जख़्म, पुराना भूल गए।
दहशत में सुनसान, पड़े सब तीर्थस्थल-
खुलकर हम त्योहार, मनाना भूल गए।

आयी नयी बहार, यार फिर होली में।
भ्रमर करें मनुहार, यार फिर होली में
पकड़ कलाई हाथ, दबायें गोरी का,
रसिक हुए मनिहार, यार फिर होली में।

महुआ पके अनार, यार फिर होली में।
खनके मनके तार, यार फिर होली में।
सुनकर के पगचाप-फागुनी पायल की-
बदल गयी झनकार, यार फिर होली में।

हुए संकुचित ताल, यार फिर होली में।
मछली करे उछाल, यार फिर होली में।
यत्र तत्र सर्वत्र, शिकारी घूम रहे-
लिए हाथ में जाल, यार फिर होली में।

लगे महकने फूल, सखी री फागुन में।
चंदन बने बबूल, सखी री फागुन में।
सरिताओं का नीर-कलेवर सिमट गया-
दिखे उघड़ते कूल, सखी री फागुन में।

मादक चली बयार, सखी री फागुन में।
फूल गए कचनार, सखी री फागुन में।
करके अलि गुञ्जार, बंसती मौसम का-
करने लगे प्रचार, सखी री फागुन में।

मन में उठे हिलोर, सखी री फागुन में।
बूढ़े हुए किशोर, सखी री फागुन में।
अपलक रहे निहार, भरे चौराहे पर-
कागा हुए चकोर, सखी री फागुन में।

रोला– 11, 13 = 24 मात्रा

आया आश्विन मास
        आश वर्षा की बीती।
कहीं छलकती जाय
        कहीं पर गागर रीती।
विविध प्रकृति के रूप
        कहीं पर भीषण सूखा।
कहीं बाढ़ से त्रस्त
        हुआ जनजीवन भूखा।

पछुवा बही बयार
        सकल दिशि डोलन लागी।
उषा-काल में शीत-
        -डली जनु घोलन लागी।
हुई कोकिला मौन
        करे खंजन अगवानी।
दबे पाँव जब चली
        निगोड़ी वर्षा-रानी।।

हुआ शरद आरम्भ, दम्भ गर्मी ने छोड़ा।
आर्द-हवा ने थाम, लिया मौसम का कोड़ा
प्रकृति बड़ी बलवान, इसे समझे सो ज्ञानी,
जिसका चाहा जिधर, उधर उसका रुख मोड़ा।

सावन और अषाढ़, मास वर्षा ऋतु बीती,
धरती अभी अतृप्त, नीर से लगती रीती,
विकसे काँस प्रसून, कुमुदनी खिली सरोवर-
आश्विन भरने लगा, भोर-आँचल में शीती।

बिखरे लगे पलाश, विटप कंटक से लागे।
दिवस उनीदे पुरुष, रैन आवत पुनि जागे।।
फर-फर चले बयार, ताल पाताल सुखावत।
गमनो संत बसंत, हृदय सूनो सो लागत।।

वार्षिक द्विपशोदा – मापनी 121 22, 121 22

शिशिर पवन कुछ,
बदल रहा है।
बसंत का मन,
मचल रहा है।
बता रही हैं,
उजास किरणें-
नवीन सूरज,
निकल रहा है।

चलीं सुखद मन-
-चली हवाएँ।
हुईं सुवासित,
दशों दिशाएँ।
दिखे मुखर से,
अबोध पल्लव-
दिखीं प्रफुल्लित,
सभी लताएँ।

सजी हुई है
सभी फिजाएँ।
हुईं सुवासित
चलीं हवाएँ।
लगे विहसने
सुमन हृदय में-
नवीन आशा
किरण जगाएँ।

ढकी ढकी सी
सभी दिशाएँ।
उठीं जलधि से
घिरी घटाएँ।
लगे कि जैसे
खुले गगन में-
कराल शिव की
खुली जटाएँ।

तमाल छंद – चौपाई + 3 = 19 मात्रा

ठंडी-ठंडी बंशी-वट की छाँव।
प्यारा प्यारा नंदलाल का गाँव।।
मधुर-मधुर यमुना का पावन नीर।
बहती सुरभित शीतल सुखद समीर।।

बृज की पावन धरती की पहचान।
जहाँ गूँजती मुरली की मृदु तान।।
जहाँ प्रेम में पगे सूर रसखान।
और भरा कण कण में गीता-ज्ञान।।

कहाँ गए हो मुरली वाले श्याम।
तुम्हें पुकारे पूरा गोकुल धाम।।
ग्वाल-बाल सब निशिदिन जोहें बाट।
तुम बिन सूने कालिन्दी के घाट।।

रजनी छंद – मापनी – 2122 2122 2122 2

हो रही घर में उपेक्षित
आज है हिन्दी।
भोर का जैसे सिसकता
साज है हिन्दी।
खींचते हैं चीर
दुःशासन यहाँ कितने-
लग रही अब द्रौपदी की
लाज है हिन्दी।

हिन्द में अस्तित्व अपना
खो रही हिन्दी।
संकुचित नित गोमती सी
हो रही हिन्दी।
पूजनीया जो रही थी
राष्ट्र मंदिर में-
किन्तु चौखट पर पड़ी अब
सो रही हिन्दी।

निश्चल– चौपाई + 7 = 22 मात्रा (अंत में गुरु लघु)

सबका बेड़ा पार करेंगे, जय श्री राम।
दुष्टों का संहार करेंगे, जय श्री रामं
राम नाम ही केवल, जीवन का आधार-
कष्ट सभी के क्षार करेंगे, जय श्री राम।

भारत भू जब फिर आयेंगे, जय श्री राम।
शबरी के भी घर जायेंगे, जय श्री राम।
और अहिल्याओं का भी, होगा उद्धार-
धर्म-ध्वजा फिर फहरायेंगे, जय श्री राम।

संतो ऋषियों मुनियों के धन, जय श्री राम।
जिनके हित में भटके वन-वन, जय श्री राम।
भारत माता के जन-जन के, मन के प्राण-
जय-जय जय-जय रघुकुल नंदन, जय श्री राम।

प्रदीप छंद – चौपाई + दोहा का विषम चरण

घाटी-घाटी पर्वत-पर्वत
गीत सुनाता कौन है?
पड़ी सुसुप्त भावनाओं को
आन जगाता कौन है?
भेजा पवन सुवासित किसने?
धरती पर मधुमास में-
ओस-कणों से वसुंधरा को
रोज सजाताा कौन है।

फूलों के अंगो में खुशबू
रंग घोलता कौन है?
चिड़ियों के कंठों से मधुरिम
बोल बोलता कौन है?
सघन निराशा से आच्छादित
भीषण झंझावात में-
तिमिर हटाकर नव आशा के
द्वार खोलता कौन है?

सिंधु छंदद मापनी– 1222 1222 1222

मुझे मालूम सब कुछ
भूल जाओगे।
नयी जब प्यार की
दुनिया बसाओगे।
यही अंजाम होता
है मुहब्बत का-
सभी कसमें सभी
वादे भुलाओगे।

खुशी के गीत
फिर से गुनगुनाओगे।
चमन में फूल बनकर
मुस्कराओगे।
किसी मधुमास की
छाई बहारों में-
सितारों की कहीं
महफिल सजाओगे।

छंद चवपैया (10, 8, 12त्र 30 मात्रा)

पावस पुनि आई, जन मन भायी,
हरित भूमि वन बागा।
बदरा जब बरसे, तन-मन हरसे,
सरसे कूप तड़ागा।।
कहुँ वृष्टि अवारा, बह जल धारा,
तृषित ताल कहुँ सूखे।
गरजहि घनघोरा, करि-करि सोरा,
विचरहि मेघ झरूखे।

कहुँ भा अँधियारा, कहुँ उजियारा,
विविध रूप में दिन के।
बिजुरी जब चमके, अंतर घन के,
खनके मन विरहिन के।।
देखति घन ओरा, नाचत मोरा,
सरिता पुनि उफनाई।
अति प्रेम विभोरा, नेह न थोरा,
उमगे ताल तलाई।।

छदं सरसी चौपाई + दोहा का सम चरण 27 मात्रा

सर्दी में सूरज के तेवर,
लगते अब कमजोर,
लिपटी हुई धुंध की चादर,
ढकी क्षितिज की कोर।
नागिन जैसी डसती प्रतिदिन,
काली-काली रैन-
पूछ रही चकई चकवा से,
कैसे होगी भोर।

सिमट गए सब ताल सरोवर,
दिखी कमलिनी दीन।
हुई संकुचित धीरे-धीरे
नदियों की कटि क्षीन।
सिद्ध साधकों से लगते ज्यों
जंगल उपवन बाग-
प्रौढ़ द्रुमों के पल्लव भी कुछ,
दिखने लगे मलीन।

छंद रास चौपाई + 6 त्र 22 मात्रा

दुख दर्दो में सुख से जीना
सीख लिया।
इन आँखों ने आँसू पीना
सीख लिया।
जो भी हमको ज़ख्म मिले इस,
दुनिया से-
उनको हमने हँसकर सीना,
सीख लिया।

ढोल नगाड़ो में चुप रहना,
सीख लिया।
बहती धाराओं में बहना,
सीख लिया।
मन की बातें मन के अंदर
कैद हुई-
हमने उनके मन की कहना,
सीख लिया।

छंद श्रृंगार 16 मात्रा (अंत में गुरु लघु)

जिन्हें हम रहे समझते फूल।
वही निकले मायावी शूल।
कर्म में निहित राक्षसी वृति-
कंठ में भगवा पड़े दुकूल।

विधर्मी पकड़ रहे हैं तूल।
स्वार्थ-परत की उड़ती धूल।
प्रकृति की हुई कुपित फिर दृष्टि-
हवाएँ भी चलतीं प्रतिकूल।

नहीं वर्षा वह नहीं बसन्त।
सुमन अब रहे नहीं रस वन्त।
स्वयं को कहते जो अवतार-
निकलते ढोंगी संत-महंत।

लौकिक अनाम मापनी — 221 2121 1221 212

आगे कदम सदैव
बढ़ाती हैं नारियाँ।
खेती के काम, धाम
बँटाती हैं नारियाँ।
बाईक और कार
ट्रैक्टरों की बात क्या-
नभ में विमान आज
उड़ाती हैं नारियाँ।

सम्मान स्वाभिमान
बढ़ाती हैं नारियाँ।
बन्दूक और तोप
चलाती हैं नारियाँ।
रण-बीच काट-काट
शत्रुओं के शीष को-
इतिहास बार-बार
रचाती हैं नारियाँ।

छंद गगन चौपाई + 9 मात्रा (अंत में गुरु लघु)

सम्बन्धों का ताना-बाना
        टूट जाता है।
नर-तन एक खिलौने जैसा
        फूट जाता हैं।
भव-सागर से नैया उसकी
        पार हो जाती,
राग-द्वैष से जिसका नाता
        छूट जाता है।

काम क्रोध मद लोभ मोह से
        मुक्त होता है।
जीव कर्म-बंधन से भोक्ता
        भुक्त होता है।
नहीं जटाओं से कोई भी
        सन्त बन जाता
साधु सरल-चित छल प्रपंच से
        मुक्त होता है।

छंद मनोरम – मापनी 2122 2122

सभ्यता का नव चरण है।
दम्भ या मिथ्याचरण है।
है नहीं आदर्श, केवल-
हो रहा शब्दी-करण है।

प्रेम का असमय मरण है।
वासना का संवरण है।
लुप्त होता जा रहा अब-
ज़िन्दगी का व्याकरण है।

खो गया सद् आचरण है।
भावनाओं का क्षरण है।
झूठ की इन पोथियों पर-
सत्य का बस आवरण है।

छंद उपेन्द्र बज्रा –मापनी 121 221 121 22

कभी किसी को
    कहना न आया।
कहीं किसी को
    रहना न आया।
सनेह से थीं
    परिपूर्ण नदियाँ
कुचालियों को
    बहना न आया।

किसी लहर सी
    निकली जवानी।
कभी–कभी ये
    फिसली जवानी।
दिखी समय की
    गहराइयों में–
बड़ी निगोड़ी
    छिछली जवानी।

छंद राधिका 13, 9 त्र 22 मात्रा

सखि हिय में उठे हिलोर
    जोर सावन में।
चहके बन मोर चकोर
    शोर सावन में
घन घोर बरसते तीर
    नीर के नभ से–
खनके तन–मन की पोर–
    –पोर सावन में।

सर सर सर चले बयार
    हुई मदमाती।
चपला चमके नभ बीच
    चले बल खाती।
कहुँ झींगुर कहुँ मण्डूक
    टिटहरी बोले–
बैरिन सी काली रात
    लगे बरसाती।

नीको नीको मोकौ लागै
तोहरो गाँव सजना।
जहाँ निबिया की ठंडी-
-ठंडी छाँव सजना।
अइहै पहुना बतावै
जो मुड़ेरी चढ़ि के-
नीकी लागै कौआ केरी
काँव-काँव सजना।

फैली अँगना पिआर
की जुन्हाई सजना।
जामैं खेले मेरो लाला
परछाई सजना।
बोलै ननदी जिठानी
दिवरानी हँसिकै-
मोरी मम्मी जैसी लागै
सासू-माई सजना।

दौस सरदी के बैरी
सताबैं लगे।
याद परदेसिया की
जगावै लगे।
पोर संझा सकारे
दुआरे जरै-
बुढऊ विरहा कहरवा
सुनावै लगे।

पाँव पछुवा बयरिया
पसारै सखी।
काम तकि तकि कुसुम
तीर मारै सखी।
कँपकपी संग जियरा
हिलोरै भरै-
टकटकी बाँधि देवरा
निहारै सखी।

जेठ–गरमी के दिनवा
तपावै लगे।
अंग टप–टप पसिनवा
चुआवै लगे।
कारी कोयलिया कुहुकै
कुलाचै भरै।
पीउ कहि कहि पपिहरा
जरावै लगे।

लागै गरमी की रजनी
सुहानी सखी।
महकै–महकै जबैं
रात रानी सखी।
रात ढरकी सिथिल
अंग सिगरे भए–
देह आपन लगै ज्यूँ
बिरानी सखी।

आए धीरे धीरे धीरे
नियराने बदरा।
ऊँचे नभ मा उड़ाने
वे सयाने बदरा।
पीछे धूमि के न देखैं
ना निहारैं धरती
ना पसीजे नाहीं नैक
पतियाने बदरा।

गोरे गोरे कारे कारे
कजरारे बदरा।
घुँघुरारे लागे नैनन
पिआरे बदरा।
राह कब से निहारति
पिआसी धरती
रूठे–रूठे घूमै मानौ
मनुमारे बदरा।

आयो सावन महीना
दुलरावै जियरा।
एक आबै एक जावै
भरमावै जियरा।
आई ऐसी हरजाई
बरसी ना बदरी-
कैसे सूखे मा नवैया
सरकावै जियरा।

कहूँ गर्जना सुनावै
डरपावै बदरा।
कहूँ पानी मैंहां पानी
ढरकावै बदरा।
केती बाढ़ी औ तुरानी
मतरानी नदियां-
कहूँ धरती पिआसी
झुठलावै बदरा।

बाली-बाली सुकुमारी
गदरानी सजना।
फूली-फूली अमराई
मतरानी सजना।
नख-सिख लौं सुहानी
पियरानी सरसों-
होरी जैसे धीरे-धीरे
नियरानी सजना।

होरी आई, होरी आई
होरी आई सजना।
बाबा छोरा लागैं
दादी लागैं छोरी सजना।
रैन-वासर न देखहिं
चकोरी-चकवा,
मति हुइ गइ थोरी-थोरी
भोरी-भोरी सजना।

छंद-वाचिक स्रग्विणी-----

घोसला छोड़कर दूर जाना नहीं।
पर गगन में अधिक फड़फड़ाना नहीं।
मत उड़ाने भरो सूर्य के लोक में,
बेवजह पंख अपने जलाना नहीं।

ढोल-ढपली निजी अब बजाना नहीं।
कनसुरे बेसुरे राग गाना नहीं।
बह रही हर तरफ से विशैली हवा,
घूमने का कहीं मन बनाना नहीं।

जिन्दगी है सफर भूल जाना नहीं।
साथ होता किसी के जमाना नहीं।
शान्त हो जायेगा तीव्र तूफान भी,
नाविकों धैर्य अपना गँवाना नहीं।

छंद-विधाता.....

जवानी इश्क मदिरा में नहीं कुछ भेद होता है।
उतर जाती, हृदय तृष्णा - रहित निर्वेद होता है।
मगर अभिमान के मद में बहुत अंधे हुआ करते,
जिन्हें दुष्कर्म के पथ पर न किंचित खेद होता है।

जिन्हें हीरे समझते हो समेटे काँच तुम बैठे।
मदारी के तमाशे को समझकर साँच तुम बैठे।
बिना सोचे बिना देखे दिए हैं सौ में सौ नम्बर,
परीक्षक बन स्वयं की कापियों को जाँच तुम बैठे।

किसी की आँख के सुंदर सपन को बेच देते हो।
टके के लोभ में आकर वचन को बेच देते हो।
अगर मौका मिले तुमको, जरा से स्वार्थ की खातिर,
सगे सम्बन्धियों के भी अमन को बेच देते हो।